# उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
# हल्द्वानी

## Value addition Courses

**VAC-10**

**Bachelor of Arts**

## भारतीय वाङ्मय में नैतिक शिक्षा

## Moral Education from Indian Scriptures

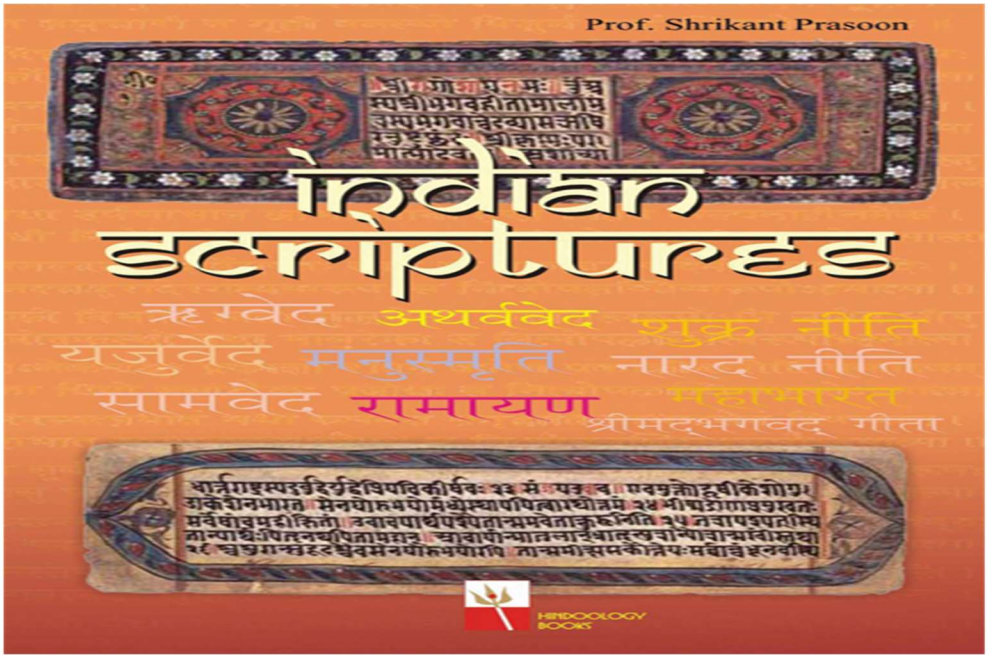

**तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे**
**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139**
**फोन नं .05946- 261122 , 261123**
**टॉल फ्री न0 18001804025**
**Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in**
**http://uou.ac.in**

## विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

**कुलपति - अध्यक्ष**
**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी**

**प्रोफेसर रेनू प्रकाश**
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

**डॉ. नन्दन कुमार तिवारी - संयोजक**
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

**प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय**
अध्यक्ष, वेद विभाग, नई दिल्ली

**प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय**
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रोफेसर श्याम देव मिश्र**
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जम्मू परिसर

**प्रोफेसर उपेन्द्र त्रिपाठी**
वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रोफेसर रामराज उपाध्याय**
अध्यक्षचर, पौरोहित्य विभाग, नई दिल्ली

## पाठ्यक्रम निर्माण, संयोजन एवं सम्पादन

**डॉ. नन्दन कुमार तिवारी**
**असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - वैदिक ज्योतिष एवं भारतीय कर्मकाण्ड विभाग**
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

| इकाई लेखन | खण्ड | इकाई संख्या |
|---|---|---|
| **प्रोफेसर रामराज उपाध्याय**<br>अध्यक्षचर, पौरोहित्य विभाग, ला.ब.शा. रा. सं.वि., नई दिल्ली | **1** | **1,2,3** |
| **प्रोफेसर श्याम देव मिश्र**<br>अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय<br>लखनऊ परिसर, लखनऊ | **1** | **4,5** |
| **प्रोफेसर श्याम देव मिश्र**<br>अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय<br>लखनऊ परिसर, लखनऊ | **2** | **1,2,3,4** |

**कापीराइट** @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

**प्रकाशन वर्ष -** 2024

**प्रकाशक** - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

**मुद्रक: - उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी**

***ISBN NO. –***

**नोट** : - ( इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा। )

**VALUE ADDITION COURSE** **VAC-10**

# भारतीय वाङ्मय में नैतिक शिक्षा

## (MORAL EDUCATION FROM INDIAN SCRIPTURES)

## BA-23 II Semester

**अनुक्रम**


| **प्रथम खण्ड – वैदिक नैतिक शिक्षा** | **पृष्ठ - 2** |
|---|---|
| इकाई 1: वेदों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा | 3-16 |
| इकाई 2: ईशादि नौ उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा | 17-31 |
| इकाई 3: प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा | 32-46 |
| इकाई 4: स्मृति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा | 47-70 |
| इकाई 5 : भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा | 71-93 |
| **द्वितीय खण्ड – भारतीय प्रमुख शास्त्रों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा** | **पृष्ठ-94** |
| इकाई 1 : बाल्मीकी रामायण के अनुसार नैतिक शिक्षा | 95-115 |
| इकाई 2 : महाभारत में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा | 116-134 |
| इकाइ 3: श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार नैतिक मूल्यांकन | 135-151 |
| इकाइ 4: श्रीरामचरितमानस के अनुसार नैतिक मूल्यांकन | 152-163 |

# भारतीय वाङ्मय में नैतिक शिक्षा

## MORAL EDUCATION FROM INDIAN SCRIPTURES

**VAC-10**

**CREDITS - 3**

# खण्ड - 1
# वैदिक नैतिक शिक्षा

# इकाई – 1 वेदों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा

**इकाई की संरचना**

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वैदिक शिक्षा
1.3.1 ऋग्वेद की नैतिक शिक्षायें
1.3.2 यजुर्वेद की नैतिक शिक्षायें
1.3.3 सामवेद की नैतिक शिक्षायें
1.3.4 अथर्ववेद की नैतिक शिक्षायें
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावलियाँ
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में वेदों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पहले आपने वेदों के बारे में पढ़ा या सुना होगा। विश्व का प्रथम साहित्य ऋग्वेद को माना जाता है। तदनन्तर यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद मिलता है। इस इकाई के अध्ययन से आप वेदों में निहित नैतिक शिक्षा के बारे में जान सकेगे।

भारतीय संस्कृति में वेदों कि संख्या चार बतलाई गयी है जिसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के रूप में जाना जाता है। यजुर्वेद के भी दो विभाग हुए, जिसे शुक्लयजुर्वेद एवं कृष्णयजुर्वेद के नाम से जाना जाता है। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार एकविंशतिधा वाह्वृच्यम् यानि ऋग्वेद की इक्कीश शाखाएं हैं, यजुर्वेद की 101 शाखाएं , सामवेद की एक हजार शाखाएं और अथर्ववेद की नव शाखाएं यानि कुल मिलाकर वेद की 1131 शाखाएं बतलाई गयी है। वर्तमान में इनकी संख्या अत्यंत न्यून हो चुकी है। चरण व्यूह नामक परिशिष्ट ग्रन्थ के अनुसार ऋग्वेद की पांच शाखाएं शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन एवं मान्डूकायन हैं। इसमें केवल शाकल शाखा ही पूर्ण रूप से उपलब्ध है। इसी प्रकार यजुर्वेद संहिता शुक्लयजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद के रूप में हैं जिसमे शुक्ल यजुर्वेद में माध्यन्दिन एवं काण्व तथा कृष्णयजुर्वेद में तैत्तिरीय, मैत्रायणी , कठ, कपिष्ठल को शाखा के रूप में जाना जाता है। सामवेद को कौथुम, राणायनीय, जैमिनि इन तीन शाखाओं के रूप में जाना जाता है तथा अथर्व वेद को शौनक और पिप्पलाद इन दो शाखाओं के रूप में जाना जाता है।

इस इकाई के अध्ययन से आप इन वेदों में व्याप्त कुछ मौलिक नैतिक बातो को जान सकेगे। इससे समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को दूर किया जा सकता है । जिससे समाज के लोग सुसभ्य होंगे और राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं संवर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना समाज कल्याण की भावना का पूर्णतया ध्यान देना इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान सहित वर्णन करने का प्रयास करना एवं वृहद् एवं संक्षिप्त दोनों विधियों के प्रस्तुतिकरण का प्रयास करना आदि।

## 1.2 उद्देश्य

उपर्युक्त अध्ययन से आप नैतिकता की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

- ❖ वेदों को लोकोपकारक बनाना।

- ❖ मन्त्रांशों की शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।
- ❖ लोगों में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।
- ❖ प्राच्य विद्या की रक्षा करना।
- ❖ लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।
- ❖ समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

## 1.3 वैदिक शिक्षा

### 1.3.1 ऋग्वेद की शिक्षाएँ:-

१. **एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति। (१।१६३।४६ )**

उस एक प्रभु को विद्वान लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। वस्तुतः सत्य एक है। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** का वचन भी एक ही तत्व की सत्यता को स्वीकार करता है। लेकिन उस तत्व का प्रवचन करने वाले जो आचार्य गण हैं वे बहुत प्रकार से समझाते हैं क्योकि समझाने वाले का उद्देश्य होता अपनी बात को समझाना लेकिन समझने वाले की अपनी मति और बुद्धि होती है।

२. **एको विस्वस्य भुवनस्य राजा ।। (६।३६।४)**

वह सब लोकों का एकमात्र स्वामी हैं अर्थात परम ब्रह्म परमात्मा ही सभी लोकों का स्वामी है और वह एक है। संहिता मन्त्रों के भाष्य में सायण ने विश्वं सर्वं कहा है अर्थात विश्व का मतलब सर्व मन जाना चाहिए। भुवन का अर्थ होता है लोक। चौदह लोकों कि चर्चा हमारे धर्म ग्रंथों में देखने को मिलती है जिसमे सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे हैं । ऊपर के सात लोक भूः , भुवः, स्वः, महः,जनः,तपः, सत्यम है। इन सब के आगे लोक शब्द प्रयोग कर देने से भूर्लोक, भुवर्लोक, इत्यादि बन जाता है।

३. **यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ।। (१।१६४।३९)**

जो उस ब्रह्म को नहीं जानता , वह वेद से क्या करेगा ? श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं **वेदैश्चसर्वै अहमेव वेद्य**: यानि सभी वेदों से मै जाना जाता हूँ। यहाँ मै शब्द उस परम ब्रह्म परमात्मा के लिए लाया गया है। इसीलिए वह परमात्मा वेदों से जाना जाता है लेकिन जो वेदों से उस परम तत्व को नहीं जान सकते उनके लिए वेद जानने का भी कोई अर्थ

नहीं है। वेदपाठी भवेद विप्रः के अनुसार मनु वेद पढने वाले की ही विप्र संज्ञा करते हैं।

**४. सं गच्ध्वं सं वदध्वम्। (१०।१९१।२ )**

मिलकर चलो और मिलकर बोलो। ऋग्वेद सभी जनों के लिए कैसे रहा जाय इसका सन्देश देता है और यह बताता है कि मनुष्य को अपने आस-पास के सभी लोगों को साथ लेकर चलना चाहिये और उनके सत्य बातों के विचारों की आवाज मे अपनी आवाज मिलाना चाहिए। उनकी सत्य कही बातों का समर्थन करना चाहिये। सत्य बातों के समर्थन करने से व्यक्ति , समाज व राष्ट्र का निर्माण होता है। असत्य बातों या विचारों का समर्थन करने से अराजकता , असुरक्षा इत्यादि उत्पन्न होते हैं।

**५. शुध्दाः पूता भवत यज्ञियास।। (१०।१८।२)**

शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवन वाले हो। अर्थात मनुष्य को अपने मानव जीवन के उद्धार के लिये उसे अपने शरीर और आत्मा को पूर्ण रूप से शुद्ध और पवित्र रखते हुये, सभी जीव-जन्तुओं के लिये परोपकार की भावना के साथ आपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्ति ही यज्ञ के योग्य होता है अर्थात उसको यज्ञ का फल मिलता है। जो शुद्ध नहीं है , जिसका आचरण पवित्र नहीं है उसे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

**६. स्वस्ति पन्थामनु चरेम। (५ ।५१।१५)**

हम कल्याण मार्ग के पथिक हों। अर्थात मनुष्य को हमेशा ऐसे मार्ग का चयन करना चाहिये जिससे सभी प्राणियो कल्याण हो। हमारी यह धारणा वर्तमान में बन जाती है कि मार्ग का चयन अपनी रूचि के हिसाब से करने लगते हैं। रूचि के हिसाब से लिया गया मार्ग का निर्णय कल्याणकारी हो भी सकता है नही भी हो सकता है। परन्तु कल्याण का चिंतन कर किया गया मार्ग का चयन कल्याण कारी ही होता है।

**७. देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम ।। (१।८९।२)**

हम देवों ( विद्वानों ) की मैत्री करें। अर्थात मानव को हमेशा ज्ञानियो, ऋषियो और विद्वानो की ही संगति करनी चाहिये, क्योकि ज्ञान प्राप्ति मे संगति का प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिये वेदो मे कहा गया है कि ज्ञान वर्द्धन के लिये मनुष्य को हमेशा देवों यानि विद्वानों की ही संगति करनी चाहिये।

**८. उप सर्प मातरं भूमिम्। (१०।१८।१०)**

मातृभूमि की सेवा करो। क्योकि **"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** के अनुसार माता एवं मातृ भूमि का स्थान स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। मातृ भूमि की सेवा से ही हम सुरक्षित रह सकते हैं क्योकि मातृ भूमि सुरक्षित नहीं तो हम भी सुरक्षित नहीं। मानव को अपने जीवन के उद्धार के लिये कई प्रकार

के ऋणो से मुक्त होने की आवश्यकता होती है जिनमे से मातृभूमि ऋण भी है जिससे मुक्त होने के लिये मनुष्य को पूर्णरूप से अपनी मातृभूमि की सेवा करनी चाहिये।

**९. भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि। (१।१२३।१३)**

हे प्रभो! हम लोगों में सुख और कल्याणमय उत्तम संकल्प, ज्ञान और कर्म को धारण कराओ। और हम कभी भी ऐसा कोइ कर्म न करे जिससे किसी भी जीव को हमारे कार्य के कारण दुख और दर्द की अनुभूति हो,ऐसा पवित्र संकल्प का ज्ञान हमे प्राप्त करावें। हमारा कर्म यज्ञ बन जाय जिससे सभी को कल्याण की प्राप्ति होती रहे।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है.

प्रश्न 1- उस एक प्रभु को विद्वान लोग कैसे पुकारते है?

क- अनेक नामों से, ख-एक नाम से , ग- दो नाम से , घ- तीन नामों से

प्रश्न 2- वस्तुतः सत्य है?

क-शून्य , ख- एक, ग- दो , घ- तीन।

प्रश्न 3- विश्व का मतलब क्या है?

क- धन , ख- मंगल, ग- सर्व , घ- राहु।

प्रश्न 4. भुवन का अर्थ क्या है ?

क- घर , ख- आकाश , ग- वन , घ- लोक।

प्रश्न 5- शुध्दाः पूता भवत ..... ?

क- यज्ञियार्स , ख- भवत , ग- देवाः , घ- जनाः ।

प्रश्न 6- आचारहीनं न पुनन्ति ..... ?

क- देवाः , ख-, वेदाः ग- स्मृतयः , घ- सूत्राणि।

प्रश्न 7- सं गच्ध्वं ..... वदध्वम् ?

क- चं , ख- कं , ग- सं , घ- रं।

प्रश्न 8- यस्तन्न .....किमृचा करिष्यति ?

क- सूर्यः , ख- देवाः ग- कविः , घ- वेद।

प्रश्न 9- उप सर्प ..... भूमिम्।

क- मातरं , ख- पितरं , ग- भ्रातरं , घ- अग्रजं।

प्रश्न 10 - जननी जन्म भूमिश्च ..... गरीयसी।

क- अपवर्गादपि , ख- स्वर्गादपि, ग- गिरादपी , घ- नरादपीद्य

इस प्रकरण में आपने ऋग्वेद में प्राप्त नैतिक शिक्षा का सामान्य परिचय प्राप्त किया। इसके अध्ययन से ऋग्वेद में प्राप्त नैतिक शिक्षा के बारे में आप सामान्य रूप से जान गये होगें। अब हम अग्रिम प्रकरण में आपको यजुर्वेद की नैतिक शिक्षाओं के बारे में बतायेंगें।

## 1.3.2. यजुर्वेद की नैतिक शिक्षाएँ :-

**१. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम। ( २५। २१)**

हम अपने कानों से भद्र-मङ्गलकारी वचन ही सुनें, और हमारा जीवन भक्ति-भाव से परिपूर्ण रहें। अर्थात हमें अपनी पांचो ज्ञानेन्द्रियो से ऐसे कार्य ही करना चाहिये जिससे हमारी आत्मा शुद्ध और पवित्र रहे। हमारी अपेक्षा या चाह कल्याण युक्त बचनों की सुनने की हो। सदैव कल्याण युक्त वचनों को सुनना ,सबके कल्याण के लिए सोचना है क्योंकि जब हम सबके कल्याण की बातों को सोचते हैं तभी हम सभी का कल्याण होता है ।

**२. स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥ (३२। ८)**

वह व्यापक प्रभु सब प्रजाओं में ओतप्रोत है,और वह मानव द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यो पर निरंतर दृष्टि बनाये हुये है। इसलिए मनुष्य को अपनी पांचो कर्मेन्द्रियो से कभी भी किसी जीव को हानि या दुःख नही पहुचना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदास जी इस बात को लिखते हैं कि 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होई मै जाना।' इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंह्ययेत अर्थात इतिहास और पुराण वेद का ही विस्तार करते हैं।

**३.मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥(४०।१)**

किसी के धन पर न ललचाओ, तथा कभी भी किसी की प्रगति और उन्नती को देख कर उसके प्रति द्वेष कि भावना नही रखना चाहिये, जो मनुष्य इसके विपरीत कार्य करते है वेदो में ऐसे मनुष्य निंदनीय बताये गए हैं।

**४. मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (३६। १८)**

सभी को परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें और कभी भी किसी व्यक्ति को मानसिक या शारीरिक रूप से कष्ट न तो स्वयं देना चाहिए और न ही देने देना चाहिए तथा अगर कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई देने पर उसे हिंसा से दूर करके अहिंसा के मार्ग में चलने के लिए प्रेरित करना चाहिये और साथ ही उसे भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखने और उनकी सहयता करने के लिए प्रेरित करना चाहिये यही वेदों के अनुसार मनुष्य का परम धर्म है।

**५. तमेव विदित्वाति मृत्युमेति ॥ (३१ । १८)**

उस ब्रह्म (प्रभु) को जानकर ही मनुष्य मृत्यु को लांघ जाता है और इस जन्म - मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर वह अपने इष्टदेव के परम लोक में सदा – सदा के लिए वास करता है यही मनुष्य का परम लक्ष्य होना चाहिए। वेदों के द्वारा मानव को यही निर्देशित किया गया है।

**६. ऋतस्य पथा प्रेत ॥ (७ । ४५)**

सत्य के मार्ग पर चलना और असत्य का हमेशा परिष्कार करना चाहिए ,अर्थात मानव को हमेशा सत्य वचन का ही वरण करना चाहिये ,जिससे वह अपने मानवीय कर्मो का वहन यथोचित रूप में कर सके , यही वेदों के अनुसार मानव का परम धर्म बाताया गया है।

**७. तन्मे मनः शिवसङ्कल्यमस्तु (३४।१)**

मेरा मन उत्तम संकल्पों वाला हो तथा मै अपने संकल्पों की पूर्ण सिद्धि के लिए शास्त्रों में उधृत सभी नियमों का पालन उतम विधियो के द्वारा कर संकू ,जिससे मेरा संकल्प पूर्ण रूप से सिद्ध होकर, मुझे मनोवांछित फल को प्रदान कर सकें , इस प्रकार के उत्तम संकल्पों की वेदों में सराहना की गयी है।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है.

प्रश्न-1-..... कर्णेभिः शृणुयाम।

क- भद्रं, ख-अशुभं , ग- कड़वे, घ- खट्टे।

प्रश्न-2 - स ओतः प्रोतश्च .....प्रजासु ॥

क- प्रभुः , ख- विभुः, ग- अजः, स्वभुः।

प्रश्न- 3- मा गृधः .....स्विद् धनम्।

क- तस्य, ख-अस्य, ग- कस्य, घ- नस्य।

प्रश्न-4-'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होई मै जाना। किसने लिखा ?

क- सूरदास,ख- कबीरदास,ग- रहीमदास,घ- तुलसीदास।

प्रश्न – 5- मानव को हमेशा वचन का ही वरण करना चाहिये

क- सत्य, ख- असत्य, ग- कटू, घ- अप्रिय

प्रश्न 6- मित्रस्य चक्षुषा.....।

क- सवीक्षामहे ख- समीक्षामहे, ग- सदीक्षमाहे घ- सतीक्षामहे।

प्रश्न-7 .....विदित्वाति मृत्युमेति

क- त्वमेव ख- स्वमेव,ग- तमेव,घ- नमेव।

प्रश्न- 8- .....पथा प्रेत ?

क- कस्य, ख- सत्यस्य, ग- सर्वस्य, घ- ऋतस्य।

प्रश्न- 9- तन्मे .....शिवसङ्कल्यमस्तु ?

क- मनः, ख- तनः, ग- चनः घ- घनः

प्रश्न- 10- स .....प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥

क- द्योतः, ख- ओतः, ग- स्रोतः, घ- न्योतः।

इस प्रकरण में आपने यजुर्वेद में प्राप्त नैतिक शिक्षा का सामान्य परिचय प्राप्त किया। इसके अध्ययन से यजुर्वेद में प्राप्त नैतिक शिक्षा के बारे में आप सामान्य रूप से जान गये होगें। अब हम अग्रिम प्रकरण में आपको सामवेद की नैतिक शिक्षाओं के बारे में बतायेंगें।

## 1.3.3. सामवेद की शिक्षाएँ :-

१. **अध्वरे सत्यधर्माणं कविं अग्निं उप स्तुहि। (३२)**

हिंसारहित यज्ञ में सत्य धर्मका प्रचार करनेवाले अग्रिकी स्तुति करो।

**२. ऋचा वरेण्यं अवः यामि॥ (४८)**

वेदमन्त्रोंसे मैं श्रेष्ठ संरक्षण माँगता हूँ।

**३. मन्त्रश्रुत्यं चरामसि। (१७६)**

वेद मन्त्रों में जो कहा है, वही हम करते है।

**४. ऋषीणां सप्त वाणी: अभि अनूषत्॥ ( ५७७)**

ऋषियों की सात छन्दोंवाली वाणी कहो- वेदमन्त्र बोलो।

**५. अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ॥(६०३)**

मोक्ष प्राप्ति के लिये तू अपनी उन्नति करते हुए द्युलोक में उत्तम यश प्राप्त कर।

**६. यज्ञस्य ज्योतिः प्रियं मधु पवते। (१०३१)**

यज्ञ की ज्योति प्रिय और मधुर भाव उत्पन्न करती है।

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है।

प्रश्न- 1- अध्वरे सत्यधर्माणं .....अग्निं उप स्तुहि ?

क- कविं, ख- रविं, ग- गवीं, घ- छवीं।

प्रश्न- 2- -------- वरेण्यं अवः यामि ॥ (४८)

क- दृचा , ख- ऋचा , ग- दिशा घ- दृशा

प्रश्न- 3- अव शब्द का अर्थ क्या है ?

क- आना , ख- अब , ग- संरक्षण घ- माँगना।

प्रश्न- 4- मन्त्रश्रुत्यं .....।

क- वहामसी , ख- वादामसी, ग- सदमसी घ- चरामसि

प्रश्न- 5- वेदमन्त्रोंमें जो कहा है, वही हम..... है।

क- करते, ख- नहीं करते , ग- धरते घ- वरते।

प्रश्न- 6- ऋषीणां ..... वाणी: अभि अनूषत्॥

क- षड् ,ख- सप्त, ग- अष्टौ, घ- नव।

प्रश्न- 7- ऋषियोंकी .....छन्दोंवाली वाणी कहो- वेदमन्त्र बोलो।

क- पांच, ख- छ, ग- सात, घ- आठ।

प्रश्न- 8- अमृताय आप्यायमानः .....उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ॥

क- रयिं, ख- भुवीं, ग- गवीं , घ- दिवि।

प्रश्न- 9- यज्ञस्य .....प्रियं मधु पवते।

क- ज्योतिः, ख- भूतिः, ग- दूतिः, घ- धूतिः।

प्रश्न- 10 - यज्ञकी ज्योति प्रिय और मधुर .....उत्पन्न करती है।

क- श्रद्धा, ख- भक्ति, ग- दृष्टि, घ- भाव

ख-

## 1.3.4. अथर्ववेद की शिक्षाएँ :-

**१. तस्य ते भक्तिवांसः स्याम॥ (६ । ७९ । ३)**

हे प्रभो ! हम तेरे भक्त हों।

**२. एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। (२ । २ । १)**

एक परमेश्वर ही पूजाके योग्य और प्रजाओंमें स्तुत्य है।

**३. स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ (४। २३ । १)**

वह ईश्वर हमें पापसे मुक्त करे।

**४. य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥ ( ९ । १० । १)**

जो उस ब्रह्मको जान लेते हैं, वे मोक्षपद पाते हैं।

**५. सं श्रुतेन गमेमहि ॥ (१ । १ । ४)**

हम वेदोपदेश से युक्त हों ।

**६. यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः ॥ (९ । १० । १४)**

यज्ञ ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको बाँधनेवाला नाभिस्थान है।

**७. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । (११ । ५ । १९)**

ब्रह्मचर्यरूपी तपोबल से ही विद्वान् लोगों ने मृत्यु को जीता है।

**८. मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ (१६ । २ । २)**

मैं मीठी वाणी बोलूँ।

**९. परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु । (१८ । ३ । ६२)**

मृत्यु हम से दूर हो और अमृत-पद हमें प्राप्त हो ।

**१०. सर्वमेव शमस्तु नः ॥ (१९ । ९ । १४)**

हमारे लिये सब कुछ कल्याणकारी हो ।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है।

प्रश्न-1 तस्य ते भक्तिवांसः .....॥

क- स्याम, ख- वाम, ग- व्याम, घ- नाम।

प्रश्न- 2- एक .....नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।

क- नहीं ,ख- एव, ग- त्वं, घ- सः ।

प्रश्न-3- .... नो मुञ्चत्वंहसः ॥

क- सर्वः, ख- त्वं, ग- स , घ- वः ।

प्रश्न -4- ..... इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥

क- सर्वः, ख- त्वं, ग- स , घ- य ।

प्रश्न- 5- .....श्रुतेन गमेमहि ॥

क- सं , ख- त्वं, ग- स , घ- य ।

प्रश्न- 6- यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य .....॥

क- पृथ्वी, ख- नाभिः, ग- यज्ञ, घ- भोक्ता ।

प्रश्न- 7- ब्रह्मचर्येण .....देवा मृत्युमपाघ्नत ।

क- वयसा, ख- तमसा, ग- तपसा, घ- वचसा ।

प्रश्न- 8- .....वाचमुदेयम् ॥

क- रस्वतीं , ख- भोगवतीं, ग- धनवतीं, घ- मधुमतीं ।

प्रश्न-9- परैतु मृत्युरमृतं न .....।

क- ऐतु, ख- भवतु, ग- अवतु, घ- ब्रुवतु ।

प्रश्न- 10- सर्वमेव शमस्तु ....॥

क- वः, ख- नः, ग- दः, घ- सः ।

इस प्रकरण में आपने वेदों में नैतिक शिक्षा के बारे में जाना । अब आप नैतिक शिक्षा के बारे में वेदों का क्या कहना है, यह जान गये होंगे।

## 1.4. सारांश

इस इकाई में आप ने वेदों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा के बारे में जाना है। नैतिक शिक्षा के अभाव में लोग सन्मार्ग से भटक जाते हैं इसलिए चारों वेदों में जो नैतिक शिक्षा के बारे कहा गया है उसका अत्यंत संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जा रहा है कि वस्तुतः सत्य एक है। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** का वचन भी एक ही तत्व की सत्यता को स्वीकार करता है। **एको विश्वस्य भुवनस्य राजा** ।।का मन्त्र यह कहता है कि परम ब्रह्म परमात्मा ही सभी लोकों का स्वामी है और वह एक है। संहिता मन्त्रों के भाष्य में सायण ने विश्वं सर्वं कहा है अर्थात विश्व का मतलब सर्व जानना चाहिए। **यस्तन्न वेद किमृचा**

**करिष्यति**।। जो उस ब्रह्म को नहीं जानता , वह वेद से क्या करेगा? **सं गच्ध्वं सं वदध्वम्**। मिलकर चलो और मिलकर बोलो। ऋग्वेद सभी जनों के लिए कैसे रहा जाय इसका सन्देश देता है और यह बताता है कि मनुष्य को अपने आस-पास के सभी लोगों को साथ लेकर चलना चाहिये और उनके सत्य बातों के विचारों की आवाज मे अपनी आवाज मिलानी चाहिए। उनकी सत्य कही बातों का समर्थन करना चाहिये। सत्य बातों के समर्थन करने से व्यक्ति , समाज व राष्ट्र का निर्माण होता है। **शुध्दाः पूता भवत यज्ञियासः**।। शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवन वाले हो। अर्थात मनुष्य को अपने मानव जीवन के उद्धार के लिये उसे अपने शरीर और आत्मा को पूर्ण रूप से शुद्ध और पवित्र रखते हुये, सभी जीव-जन्तुओं के लिये परोपकार की भावना के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्ति ही यज्ञ के योग्य होता है अर्थात उसको यज्ञ का फल मिलता है। जो शुद्ध नहीं है, जिसका आचरण पवित्र नहीं है उसे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**। **स्वस्ति पन्थामनु चरेम।** हम कल्याण मार्ग के पथिक हों। देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम्।। हम देवों ( विद्वानों ) की मैत्री करें। अर्थात मानव को हमेशा ज्ञानियो, ऋषियो और विद्वानो की ही संगति करनी चाहिये। मातृभूमि की सेवा करो ।भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि। हे प्रभो! हम लोगों में सुख और कल्याणमय उत्तम संकल्प, ज्ञान और कर्म को धारण कराओ। इस प्रकार हमे यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में भी सूक्त वचनों का भण्डार देखने को मिलता है।

## 1.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

जननी – माता , जन्मभूमि: – जन्म स्थान , स्वर्गादपि – स्वर्ग से भी , गरीयसी- श्रेष्ठ , भद्रं – कल्याण , कर्णेभिः – कानों से , शृणुयाम – सुनें , ब्रह्मचर्येण – ब्रह्मचर्य से , तपसा – तप के द्वारा , देवा – देवों ने , मृत्युमपाघ्नत – मृत्यु पर विजय प्राप्त किया , शुध्दाः पूता – पवित्र, भवत - होता है, यज्ञियासः – यज्ञ के द्वारा, यज्ञो – यज्ञ , विश्वस्य- विश्व का भुवनस्य- लोक का , नाभिः- नाभि , सम्पूर्ण- सारा , ब्रह्मचर्येण- ब्रह्मचर्य से , मधुमतीं – मधुर युक्त ,वाचमुदेयम् – वाणी बोलनी चाहिए, न- नहीं, ऐतु- जाना , सर्वमेव- सब कुछ ही , अध्वरे – यज्ञ में , सत्यधर्माणं- सत्य का आचरण करने वाले , कविं – ज्ञानी , अग्निं – अग्नि ,उप- समीप , स्तुहि – स्तुति करो , ऋचा- मन्त्र , वरेण्यं– श्रेष्ठ, अवः – रक्षक , ऋषीणां- ऋषियों की , सप्त- सात, अमृताय- अमृत के लिए , उत्तमानि- उत्तम।

## 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इस उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो

उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

**1.3.1. के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

1- क , 2- ख, 3- ग, 4- घ, 5- क, 6- ख, 7- ग, 8- घ, 9- क, 10- ख।

1.3.2 . के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क , 2- ख, 3- ग, 4- घ, 5- क, 6- ख, 7- ग, 8- घ, 9- क, 10- ख।

1.3.3. के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1 -क , 2- ख, 3- ग, 4- घ, 5- क, 6- ख, 7- ग, 8- घ, 9- क, 10- ख

1.3.4. के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1-क , 2- ख, 3- ग, 4- घ, 5- क, 6- ख, 7- ग, 8- घ, 9- क, 10- ख।

## 1.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1-ऋग्वेदः,

2- यजुर्वेदः,

3- सामवेदः,

4- अथर्ववेदः

## 1.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री –

1- वैदिक साहित्य का इतिहास

2- वैदिकवांग्मयस्येतिहासः

3- वैदिकसाहित्येतिहासः

## 1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. नैतिक शिक्षा का क्या तात्पर्य है?
2. वेद कितने हैं, उनके नाम बताइए ?
3- ऋग्वेद की नैतिक शिक्षा के बारे में बताइये।

4- यजुर्वेद की नैतिक शिक्षा के बारे में बताइये।

5- सामवेद की नैतिक शिक्षा के बारे में बताइये।

6- अथर्ववेद की नैतिक शिक्षा के बारे में बताइये।

7- ऋग्वेद से क्या समझते हैं ?

8- यजुर्वेद से क्या समझते हैं?

9- सामवेद से क्या समझते हैं?

10- अथर्ववेद से क्या समझते है ?

# इकाई – 2 ईशादि नौ उपनिषद् के अनुसार नैतिक शिक्षा

**इकाई की संरचना**

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार

2.3.1. ईशावास्योपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा

2.3.2 केन एवं कठोपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा

2.3.3 प्रश्न, मुण्डक एवं माण्डुक्य उपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा।

2.3.4 ऐतरेय ,तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतरोपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा।

2.4 नैतिक शिक्षा का महत्व

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावलियां

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पूर्व आपने वेदों में प्राप्त नैतिक शिक्षा का अध्ययन कर लिया होगा। जीवन को आचार - विचार से संपन्न बनाने के लिये नैतिक शिक्षा का ज्ञान सभी जन को अवश्य होना चाहिए। ''**आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः**'' के अनुसार आचार-विचार से हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आचार-विचार से हीन व्यक्ति की नैतिकता पतित हो जाती है जिसके कारण वह सिद्धान्त विहीन हो जाता है जिससे समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक शिक्षा से युक्त होना चाहिए।

वास्तव में नैतिक शिक्षा का मतलब है - नीति सम्पन्न शिक्षा, यानी जीवन के सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति की एक नीति होती है अर्थात् नियम या सिद्धान्त होता है। उस नियम या सिद्धांतों से व्यक्ति समाज में अपना जीवन जीता है और उसी के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा होती है। शास्त्रों ने कहा है – **कीर्तिर्यस्य स जीवति** अर्थात् जिसकी कीर्ति यानी यश है उसको जीवित माना जाता है चाहे शरीर उसका जीवित हो या न हो। शरीर तो विनाशी है, नष्ट हो जाने वाला है परन्तु ज्ञान अविनाशी है अर्थात् ज्ञान का कभी विनाश नहीं होता है। इसलिए व्यक्ति को अपना जीवन नैतिकता से सम्पन्न बिताना चाहिए जो बिना नैतिक शिक्षा के नहीं हो सकता।

इस इकाई के अध्ययन से आप ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे आचार विचारसे हीन व्यक्ति भी अपने कार्यों का मूल्यांकन कर अपने चरित्र में सुधार कर सकेगें, जिससे वे नैतिकता का पालन करते हुए यश के भागी बनेगें । समाज सुसंगठित एवं सुसभ्य बनेगा और जो लोग समाज से भटक गये हैं वे भी समाज के अंग बन जायेगें। इसके अलावा नैतिक शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति समाज को अपराध विहीन बनाएगा । समाज से अत्याचार, अनाचार, पापाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का निवारण होगा , जिससे गरीबी, अशिक्षा, असुरक्षा आदि का समापन हो सकेगा। इससे भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायता मिलेगी , सामाजिक सहभागिता का विकास होगा और वर्तमान के समस्यायों का समाधान हो सकेगा।

## 2.2 उद्देश्य

अब आप ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा की अवश्यकता को समझ रहे होंगे। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं-

- समाज को सुसभ्य बनाना ।

- सभी को आदर्श आचरण से संपन्न करना।
- कार्यकुशलता की अभिवृद्धि करना।
- औपनिषदिक ज्ञान को संरक्षित करना।
- समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

## 2.3 ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार –

इसमें ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार किया जाएगा। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर उपनिषदों में व्याप्त नैतिक शिक्षा समाज के लिए दर्पण का काम करती है। इस ज्ञान के अभाव मे समाज शक्ति सम्पन्न नहीं बन सकेगा। इसके लिए हमें प्रत्येक उपनिषदों में व्याप्त नैतिक शिक्षा को जानना और समझना होगा।

### 2.3.1. ईशावास्योपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा

शुक्लयजुर्वेदसंहिता का चालीसवां अध्याय इशावास्योपनिषद के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार नैतिक शिक्षा अधोलिखित है-

1-तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

किसी दूसरे के धन की आकांक्षा न करते हुए त्यागपूर्वक अपना जीवन जीओ। आज कल दूसरे को देखने का चलन हो गया है। बहुत लोगों का समय केवल इसमें समाप्त हो जाता है कि कौन क्या कर रहा है। उसके बाद चर्चा यह चलती है कि उसके पास बहु धन है परन्तु यह मंत्र कह रहा है कि बिना इस प्रकार की अपेक्षा किये कि किसके पास कितना धन है और वह हमारा कैसे होगा यह विचार किया जाय कि जो धन हमारे पास है, उसका उपयोग करते हुए कैसे हम अपना जीवन सफल बनावें।

**2-कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**

इस लोक में कर्म करते हुए शतं यानी सौ समाः यानि वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। यह मन्त्र यह कह रहा है कि कर्म करते हुए जीने की इच्छा करनी चाहिए। प्रायः जीने की इच्छा सभी की होती है परन्तु कर्म करने में लोगों में वैमत्य देखा जाता है। लोग कहते हैं कि आराम से रहना चाहिए लेकिन जीवन का सम्बन्ध काम से है आराम से नहीं इसलिए व्यक्ति को काम करने वाला होना चाहिए। व्यक्ति का जीवन उतना ही अच्छा है जिसमे जितनी कर्म शक्ति बनी रहती है। कर्महीन जीवन को शास्त्र जीवन की संज्ञा नहीं देते हैं।

**3- यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते ।।**

जो सभी भूतानि यानि प्राणियों को अपने में पश्यति अर्थात् देखता है और सभी में आत्मानं मतलब अपने को देखता है वह किसी से घृणा नहीं करता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु की बात भी यहीं बतलाती है कि अपने सामान ही सबको देखना चाहिए। जब यह भाव मन में आ जाएगा तो समत्व भाव का उदय होगा जहाँ न किसी से राग न किसी से घृणा होगी।

**4- अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये s विद्यामुपासते।**

जो अविद्या की उपासना करतें हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। व्यक्ति को सदैव विद्या की उपासना करनी चाहिए क्योंकि विद्या से ही प्रकाश को प्राप्त किया सकता है। जीवन में प्रकाश प्राप्त करने के लिए विद्या का चिंतन एवं मनन करना चाहिए।

5- अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते

इस मन्त्र में अविद्या और विद्या से क्या होगा इसको समझाया गया है। अविद्या से आप मृत्यु को पार कर सकते हैं परन्तु पुनः जन्म एवं मृत्यु को नहीं रोक सकते परन्तु विद्या से आप अमरत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

6- हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

हिरण्मय यानी स्वर्ण से विभूषित पात्र से सत्य का मुख बन्द है। सत्य का मुख बन्द हो जाने से धर्म का मुख बन्द हो जायेगा इसलिए इस मन्त्र में पूषन देवता से प्रार्थना किया गया है कि सत्य का मुख अपिहित यानी खोल दो जिससे सत्य धर्म को जाना जा सके।

7- अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्।

हे अग्नि , हम लोगों को सुपथ यानि सुन्दर मार्ग से ले चलो। ज्ञान और कर्मों का मार्ग सुन्दर मार्ग है। प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान एवं कर्म के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए क्योकि ज्ञान से ही व्यक्ति का लक्ष्य सुस्पष्ट होता है और कर्म से वह लक्ष्य प्राप्त होता है।

8- सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ।।

जो पुरुष असम्भूति और विनाश इन दोनों की उपासना के समुच्चय को जानता है वह – जिसके कार्य का धर्म विनाश है और उस धर्मी से अभेद होने के कारण जो स्वयं भी विनाश कहा जाता है उसकी उपासना से अधर्म तथा कामना आदि दोषों से उत्पन्न हुए अनैश्वर्य रूप मृत्यु को पार करके हिरण्यगर्भ की उपासना से अणिमादि ऐश्वर्य की प्राप्ति रूप फल ही मिलता है , उससे अनैश्वर्य आदि मृत्यु को पर करके असम्भूति अव्यक्तोपासना से प्रकृतिलय रूप अमृत प्राप्त कर लेता है।

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- ..... त्यक्तेन भुन्जीथा।

क- तेन , ख- केन, ग - येन, घ-श्येन।

2- कुर्वन्नेवेह .....जिजीविषेच्छतं समाः।

क- धर्माणि, ख- कर्माणि, ग-मर्माणि , घ -वर्माणि।

3- समा शब्द का अर्थ क्या है ?

क- बराबर, ख- सौ , ग- वर्ष, घ- सहित।

4- भूतानि का अर्थ क्या हैं?

क-भूतों को , ख- प्रेतों को, ग- राक्षसों को, घ- प्राणियों को।

5- पश्यति का अर्थ क्या है ?

क- देखना ,ख- सुनना, ग-रहना , घ- बोलना।

6- यस्तु .....भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति?

क- धर्माणि, ख- सर्वाणि, ग-मर्माणि , घ -वर्माणि।

7- सर्वभूतेषु .....ततो न विजिगुप्सते।

क- स्वात्मानं, ख- आत्मानं, ग- चात्मानं,घ- परमात्मानं।

8- अन्धन्तमः .....ये s विद्यामुपासते।

क- विशन्ति, ख- दिशन्ति, ग-हसन्ति , घ- प्रविशन्ति।

9- हिरण्मयेन ..... सत्यस्यापिहितं मुखम्।

क- पात्रेण, ख- नेत्रेण, ग-श्रोत्रेण, घ-वक्त्रेण।

10-अग्ने .....सुपथा राये अस्मान्।

क-धय ,ख- नय, ग-रय , घ- गय।

**2.3.2 केन एवं कठोपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा**

**1- आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।**

आत्मना यानी स्वयं से ही वीर्य यानि उस शक्ति को विन्दते अर्थात् जाना जा सकता है। आत्मा बोध क्रिया का कर्ता है इसलिए बोध क्रिया रूप लिंग से उसके कर्ता को जानता है। विद्या से अमृत तत्व को जाना जाता है।

**2- अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्षणं संकल्पः ।**

इसके अनन्तर अध्यात्म उपासना का उपदेश करते हुये कहते हैं कि यह मन जो जाता हुआ सा कहा जाता है वह ब्रह्म है – इस प्रकार उपासना करनी चाहिए क्योंकि इससे यह ब्रह्म का स्मरण करता है और इससे ही यह निरन्तर संकल्प किया जाता है ।

**3- न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो ।**

मनुष्य को धन से तृप्त नही किया जा सकता है।

**4-श्रेयश्च प्रेयश्च मनष्यमेततस्तौसम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।**

श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के पास आते हैं । उन दोनों को बुद्धिमानपुरुष भली प्रकार विचार कर अलग कर लेता है ।

**5- श्रेयो हि धीरो ऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।**

धीर पुरुष श्रेय का और मंद पुरुष प्रेय का वरण करते है ।

**6- अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितं गुहायाम्।**

अणु से भी अणु और महान से भी महान आत्मा जीव की हृदय रूप गुहा में स्थित है । निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस महिमा को देखता है और शोक रहित हो जाता है ।

**7- नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो ।**

यह आत्मा केवल प्रवचन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।

**8- नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञाने नैनमाप्नुयात् ।**

अशान्त मन से विशिष्ट ज्ञानी भी उस ब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता है ।

**9-मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।**

मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से आत्मा महान है ।

**10-उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो।

**11 – अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।**

जिस प्रकार सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप के अनुरूप हो जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है तथा उनसे बाहर भी है।

**अभ्यास प्रश्न**- उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- आत्मना विन्दते वीर्यं ……विन्दतेऽमृतम्।

क – विद्यया, ख- क्रियया, ग-भिया,घ-ह्रिया।

2-अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव मनो s नेन चैतदुपस्मरत्यभीक्षणं..... ।

क- विकल्पः , ख- संकल्पः,ग- प्रकल्पः, घ- यशोकल्पः।

3-न .....तर्पणीयो मनुष्यो।

क- नियमेन, ख-धनेन,ग- वित्तेन ,घ- स्वेन

4-श्रेयश्च प्रेयश्च मनष्यमेततस्तौसम्परीत्य विविनक्ति .....।

क- वीरः, ख- नीरः,ग- कीरः, घ- धीरः

5- श्रेयो हि धीरो ऽभिप्रेयसो वृणीते .....मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।

क- प्रेयो, ख-वरो, ग– श्रेयो, घ- धीरो

6- अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितं ---------।

क- निशायाम्, ख- गुहायाम्, ग- दिशायाम् , घ- विदिशायाम् ।

7- नायमात्मा .....लभ्यो।

क- वचनेन ,ख- कथनेन,ग- प्रवचनेन, घ- धनेन

8- नाशान्तमनसो वापि .....नैनमाप्नुयात्।

क -विज्ञाने, ख- अज्ञाने, ग- सज्ञाने , घ- प्रज्ञाने

9-मनसस्तु .....बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।

क- परा, ख-गिरा, ग-निरा, घ-सिरा।

10-उत्तिष्ठत जाग्रत .....वरान्निबोधत।

क-अप्राप्य, ख- प्राप्य, ग- विप्राप्य,घ- सुप्राप्य।

2.3.3 . प्रश्न, मुण्डक एवं माण्डुक्य उपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा।

1- प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

प्रजाओं के प्राण स्वरूप सूर्य का उदय होता है।

2- ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वन्गिरसामसि।

अथर्वान्गिरस ऋषियों का चरित्र सत्य आचरण है।

3 - मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति।

जिस प्रकार माता पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार हे प्राण , हमे श्री और बुद्धि प्रदान करे।

4-स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति।

सर्वज्ञ सभी में प्रवेश कर जाता है।

5-सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः।

ज्ञानी पुरुष किसी भी सम्यक प्रयोग में विचालित नही होता है।

6-समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ को समिधा हाथ में लेकर गुरु के पास जाना चाहिए।

7-स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।

अज्ञान के उस पार जाने पर व्यक्ति का कल्याण होता है।

8-तस्मिन्दृष्टे परावरे।

उस परावर यानी ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर सारे संशय नष्ट हो जाते हैं।

9-द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजातम्।

साथ- साथ रहने वाले दो सुन्दर पर्ण यानी सुन्दर या उत्तम विचार वाले लोग एक आश्रय में आनंन्द से रहते हैं।

10 -सत्यमेव जयति नानृतम्।

सत्य की जय होती है, असत्य की नहीं।

11-आप्तकामस्य का स्पृहा

आप्तकाम यानी पूर्णकाम को कोई स्पृहा नहीं हो सकती है।

12 –जातं तस्य ही जायते।

उत्पत्तिशील वस्तु से ही उत्पत्ति संभव हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- प्राणः प्रजानामुदयत्येष .....।

क- सूर्यः, ख- चन्द्रः, ग- भौमः,घ- बुधः ।

2-ऋषीणां -------सत्यमथर्वन्गिरसामसि ।

क- कीर्तनं, ख- चरितं, ग- गदितं , घ- कथितं ।

3 - मातेव -------रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ।

क- मित्रान् , ख- वर्यान् ,ग- पुत्रान्, घ- सर्वान् ।

4- स -------सर्वमेवाविवेशेति ।

क- वेदज्ञः, ख-देवज्ञः, ग- प्राज्ञः घ- सर्वज्ञः

5-सम्यक्प्रयुक्तासु न .....ज्ञः ।

क- कम्पते,ख-सेवते,ग-प्रकाशते,घ- विद्यते।

6-समित्पाणिः ---------ब्रह्मनिष्ठम् ।

क-देवं, ख- श्रोत्रियं, ग- विक्रियं घ-सक्रीयं।

7 -स्वस्ति वः पाराय -------परस्तात् ।

क- रजसः , ख- यशसः ,ग- तमसः,घ- वयसः ।

3- तस्मिन्दृष्टे ---------।

क- परावरे, ख- जगन्मये,ग- विनिर्मये, घ- दिवाकरे।

9 -द्वा सुपर्णा ------सखायासमानं वृक्षं परिषस्वजातम् ।

क- वियुजा, ख- सयुजा, ग-नियुजा,घ- अयुजा ।

1० -सत्यमेव -------नानृतम् ।

क- गच्छति , ख-वदति, ग- जयति, घ- गदति ।

11 -आप्तकामस्य ------स्पृहा ।

क- हा,ख- सा, ग- का , घ- वा

12 –जातं ------ही जायते ।

क- तस्य, ख- अस्य, ग-वश्य, घ-कस्य

2.3.4 ऐतरेय ,तैतिरीय एवं श्वेताश्वतरोपनिषद के अनुसार नैतिक शिक्षा।

1- ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च।

ऋत तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है ।

2-सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।

सत्य तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है।

3-तपश्च च स्वाध्यायप्रवचने च।

तप तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है।

4 -दमश्च च स्वाध्यायप्रवचने च।

दम तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है।

5-सत्यं वद।धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

सत्य बोलिए, धर्म का आचरण करिए, स्वाध्याय में प्रमाद न करें।

6- देवपित्रृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

देवता और पितरों के कार्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए।

7- मात्रृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

माता देवता हैं, पिता देवता हैं, आचार्य देवता हैं, अतिथि देवता हैं।

8- यान्यन्वद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।

जो अनिन्द्य कर्म हैं उनका सेवन करना चाहिए। अन्य का नहीं।

9-यान्यस्माकं सुचरितानि। त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

जो हमारे शुभ आचरण है, उनकी उपासना करनी चाहिए। अन्य का नहीं।

10-श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया sदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

श्रद्धा से देना चाहिए। अश्रद्धा से नही देना चाहिए। अपने ऐश्वर्य के अनुसार देना चाहिए। लज्जा पूर्वक देना चाहिए। भय मानते हुए देना चाहिए। संवित यानि मैत्री आदि कार्यों के निमित्त देना चाहिए।

11-अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नेन जातानि जीवन्ति

अन्न को ब्रह्म समझना चाहिए। अन्न से ही जीव जीवित रहते हैं।

12- कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति विचिन्त्या।

काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा , भूत और पुरुष ये कारण हैं , इनकी चिन्ता करनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- ऋतं ---- स्वाध्यायप्रवचने च।

क- च , ख-ऋत,ग- स्वाध्याय घ - प्रवचन।

2-..... च स्वाध्यायप्रवचने च।

क- सत्य ख- सत्यं ग- स्वाध्याय घ-प्रवचन।

3-..... स्वाध्यायप्रवचने च।

क- तप ख-स्वाध्याय ग- तपश्च घ- प्रवचन ।

4 ------ स्वाध्यायप्रवचने च।

क- दम, ख- स्वाध्याय, ग- प्रवचन, घ- दमश्च ।

5-सत्यं वद।धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा-----।

क- प्रमदः ,ख- विषदः, ग- गरदः , घ-सुखदः।

6- देवापित्रृकार्याभ्यां ------ प्रमदितव्यम्।

क-च, ख- न, ग- व, घ- स ।

7- मात्रृदेवो भव। पितृदेवो भव।-------देवो भव। अतिथिदेवो भव।

क- पितामह,ख- पिता, ग- आचार्य, घ- मातामह।

8- यान्यन्वद्यानि ------तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।

क- वर्मा, ख- कर्मा, ग- शर्मा,घ- कर्माणि।

9-यान्यस्माकं -------। त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

क- सुचरितानि, ख- कुचरितानि ग-रचितानी,घ- गदितानी

10------- देयम्।अश्रद्धया sदेयम्।श्रिया देयम्।ह्रिया देयम्।भिया देयम् । संविदा देयम्।

क- विश्रद्धया,ख- श्रद्धया, ग- निश्रद्धया, घ- किश्रद्धया।

11-अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् ।अन्नेन -------जीवन्ति।

क- कातानी , ख- दातानी, ग- जातानि , घ- वातानी।

12- कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा ------- योनिः पुरुष इति विचिन्त्या।

क- कातानी , ख- दातानी, ग- जातानि , घ- भूतानि।

## 2.4 नैतिक शिक्षा का महत्व-

मानव जीवन में नैतिक शिक्षा का अत्यन्त महत्त्व बतलाया गया है। नैतिक जीवन को आदर्श जीवन कहा गया है। जिस समाज में नैतिकता नहीं होती है, वह समाज विकसित नहीं हो पाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि –

**राज नीति बिन धन बिनु धर्मा। बिनही समर्पे नहि सत्कर्मा।।**

इसका मतलब नीति के बिना राज्य नहीं चल सकता है। यहाँ नीति का मतलब नियम है, परन्तु नैतिक का मतलब सिद्धान्त है जिसका अर्थ चरित्र से होता है। चरित्र से संयुक्त नियम या सिद्धांत ही नैतिक है। नैतिक जीवन ही व्यक्ति को महान बनाता है। नैतिकता की सर्वत्र प्रशंसा देखने को मिलती है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का जीवन नैतिकता से परिपूर्ण माना जाता है, इसीलिए उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। नैतिक आचरण को पुण्य का कारण माना गया है, इसके विपरीत अनैतिक आचरण पाप का हेतु है। नैतिक समाज में अत्याचार, अनाचार, पापाचार, भ्रष्टाचार का कोई स्थान नहीं होता है , क्योकि एक नैतिक व्यक्ति सबके साथ उत्तम आचरण करता है। नैतिक जीवन युक्त समाज सभ्य समाज के अन्तर्गत आता है। इसमें व्यक्ति स्वमर्यादित होता है। इस जीवन में चारित्रिक सम्बल होता है। कहते हैं धन गया तो कुछ नहीं गया , बल गया तो कुछ नहीं गया लेकिन चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया। चरित्र हीन को आचरण हीन कहा गया है। **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः** के अनुसार यह कहा गया है कि आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नही कर सकते। आचारहीन व्यक्ति वह होता है जिसका जीवन नैतिकता से रहित होता है। **आचारः परमो धर्मः** में आचार को परम धर्म बतलाया गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखते हैं- **उपनीय गुरुः शिष्यं शौचाचारश्च शिक्षयेत्** अर्थात् गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करके शौच और आचार की शिक्षा शिष्य को दे । आचार की शिक्षा देने के उपरान्त उसको विद्या पढ़ानी चाहिए। नैतिक व्यक्ति की पठित विद्या अत्यन्त फलवती होती है, वहीं अनैतिक व्यक्ति की पठित विद्या वन्ध्या हो जाती है। अतः नैतिक शिक्षा का ज्ञान प्रत्येक सफल जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपादेय है।

## 2.5 सारांश –

इस इकाई में ईशादि नव उपनिषदों के अनुसार नैतिक शिक्षा के बारे में आप सभी ने जाना। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर उपनिषदों में व्याप्त नैतिक शिक्षा समाज के लिए दर्पण का काम करती है। इस ज्ञान के अभाव मे समाज शक्ति सम्पन्न नहीं बन सकेगा क्योंकि -तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् में कहा गया है- किसी दूसरे के धन की आकांक्षा न करते हुए त्यागपूर्वक अपना जीवन जीओ। बहुत लोगों का समय केवल इसमें समाप्त हो जाता है कि कौन क्या कर रहा है। उसके बाद चर्चा यह चलती है कि उसके पास बहुत धन है परन्तु यह मंत्र कह रहा है कि बिना इस प्रकार की अपेक्षा किये कि किसके पास कितना धन है और वह हमारा कैसे होगा यह विचार किया जाय कि जो धन हमारे पास है, उसका उपयोग करते हुए कैसे हम अपना जीवन सफल बनावें। कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः इस लोक में कर्म करते हुए शतं यानी सौ समाः

यानि वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। प्रायः जीने की इच्छा सभी की होती है , परन्तु कर्म करने में लोगों में वैमत्य देखा जाता है । लोग कहते हैं कि आराम से रहना चाहिए लेकिन जीवन का सम्बन्ध काम से है आराम से नहीं इसलिए व्यक्ति को काम करने वाला होना चाहिए। कर्महीन जीवन को शास्त्र जीवन की संज्ञा नहीं देते हैं ।यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते। जो सभी भूतानि यानि प्राणियों को अपने में पश्यति अर्थात् देखता है और सभी में आत्मानं मतलब अपने को देखता है वह किसी से घृणा नहीं करता है। अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते - जो अविद्या की उपासना करतें हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। जीवन में प्रकाश प्राप्त करने के लिए विद्या का चिंतन एवं मनन करना चाहिए। केन एवं कठोपनिषद के अनुसार आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् - आत्मना यानी स्वयं से ही वीर्य यानि उस शक्ति को विन्दते अर्थात् जाना जा सकता है। विद्या से अमृत तत्व को जाना जाता है। अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्षणं संकल्पः। न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो। मनुष्य को धन से तृप्त नही किया जा सकता है। श्रेयश्च प्रेयश्च मनष्यमेततस्तौसम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के पास आते हैं। श्रेयो हि धीरो ऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते। धीर पुरुष श्रेय का और मंद पुरुष प्रेय का वरण करते है। ऐतरेय ,तैतिरीय एवं श्वेताश्वतरोपनिषद के अनुसार- ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च- ऋत तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है। सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च-सत्य तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है। तपश्च च स्वाध्याय प्रवचने च- तप तथा स्वाध्याय और प्रवचन अनुष्ठान किये जाने योग्य है। आदि आदि नैतिक शिक्षा के सुवचन मिलते हैं।

## 2.6 पारिभाषिक शब्दावलियां -

त्यक्तेन- त्याग पूर्वक , भुन्जीथा- भोग करना चाहिए , मा- नहीं, गृधः- इकट्ठा , कस्य- किसका, धनम्- धन , कुर्वन्नेवेह – करते हुए ही ,कर्माणि – कर्मों को, जिजीविषेच्छतं समाः-सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए । यस्तु – जो, सर्वाणि-सभी, भूतान्यात्मन्येवानु- प्राणियों को अपने सामान ,पश्यति- देखता है । सर्वभूतेषु –सभी प्राणियों में ,आत्मानं- अपने को, ततो—वह, न- नहीं , विजिगुप्सते- घृणा करता है । अन्ध- अन्धकार, तमः- काले, प्रविशन्ति- प्रवेश , ये-जो, अविद्यामुपासते- अविद्या की उपासना करते हैं । आत्मना- अपने से , विन्दते- जाना जाता है, वीर्यं – शक्ति को ,विद्यया- विद्या से , विन्दते- जाना जाता है , अमृतम्- अमृत को , वित्तेन- धन से, तर्पणीयो- तृप्त होने योग्य, मनुष्यों- मनुष्य ,श्रेय- श्रेयष्कर , प्रेय- प्रिय, विविनक्ति – व्याख्यान करते हैं , धीरः-धीर

पुरुष ,श्रेयो हि धीरो-धीर पुरुष श्रेय का ,वरण- स्वीकार। ऋत- ऋत, स्वाध्याय- स्व शाखा का अध्ययन , प्रवचन- व्याख्यान।

## 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

पूर्व में दिये गये सभी प्रश्नों के उत्तर यहाँ दिए जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों के उत्तर हल कर लिये होंगे। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरोंका मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर सही प्रकार से दे पाएंगे।

2.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख।

2.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख,

2.3.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख, 11-ग,12-क।

2.3.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख, 11-ग,12-घ।

## 2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- ईशावास्योपनिषद
2- कठोपनिषद
3- केनोपनिषद
4- प्रश्नोपनिषद
5- मुण्डकोपनिषद
6- माण्डुक्योपनिषद
7- ऐतरेयोपनिषद
8- तैतिरीयोपनिषद
9- श्वेताश्वतरोपनिषद

## 2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-ईशादि नौ उपनिषद्

2-उपनिषद् संग्रह

3-उपनिषद् सार

## 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1- ईशावास्योपनिषद् का परिचय दीजिये।

2 - कठोपनिषद् का परिचय दीजिये।

3-केनोपनिषद् का परिचय दीजिये।

4-प्रश्नोपनिषद् का परिचय दीजिये।

5-मुण्डकोपनिषद् का परिचय दीजिये।

6-माण्डुक्योपनिषद् का परिचय दीजिये।

7-ऐतरेयोपनिषद् का परिचय दीजिये।

8-तैतिरीयोपनिषद् का परिचय दीजिये।

9-श्वेताश्वतरोपनिषद् का परिचय दीजिये।

10-उपनिषदों के बारे में बतलाइये ।

# इकाई - 3 प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा

**इकाई की संरचना**

3 .1 प्रस्तावना

3 .2 उद्देश्य

3 .3 प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार

3 .3.1. पद्मपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

3 .3.2 श्रीमद्भागवतमहापुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

3 .3.3 श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा।

3 .3.4 श्रीब्रह्मपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

3 .4 श्रीनारदपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

3 .5 सारांश

3 .6 पारिभाषिक शब्दावलियां

3 .7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3 .8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3 .9 सहायक पाठ्य सामग्री

3 .10 निबंधात्मक प्रश्न

## 3 .1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पूर्व आपने उपनिषदों में प्राप्त नैतिक शिक्षा का अध्ययन कर लिया होगा। जीवन को आदर्श गुणों से संपन्न बनाने के लिये नैतिक शिक्षा का ज्ञान सभी लोगों को अवश्य होना चाहिए। **आचारमूलं श्रुतिसारतत्वम्** के अनुसार आचार-विचार ही श्रुतियों का मुख्य तत्व है, इससे हीन व्यक्ति, वेद को नहीं जान सकते। भारतीय संस्कृति श्रुति मूला संस्कृति है, जिसमें आचार-विचार से हीन व्यक्ति को नैतिक रूप से पतित माना जाता है। इसलिए वह सिद्धान्त विहीन हो जाता है, जिससे समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक शिक्षा से युक्त होना चाहिए

वास्तव में नैतिक शिक्षा का मतलब है - नीति सम्पन्न शिक्षा, यानी जीवन के सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति की एक नीति होती है अर्थात् नियम या सिद्धान्त होता है। उस नियम या सिद्धांतों से व्यक्ति समाज में अपना जीवन जीता है और उसी के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा होती है। बृहन्नारदीयपुराण 21/32 में कहा है – नास्ति कीर्तिसमं धनम् अर्थात् जिसके पास कीर्ति यानी यश है, उसके पास ही धन है, उसका शरीर जीवित हो या न हो। शरीर तो विनाशी है, नष्ट हो जाने वाला है, परन्तु ज्ञान अविनाशी है अर्थात् ज्ञान का कभी विनाश नहीं होता है। इसलिए व्यक्ति को अपना जीवन नैतिकता से सम्पन्न बिताना चाहिए, जो बिना नैतिक शिक्षा के नहीं हो सकता।

इस इकाई के अध्ययन से आप प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे आचार-विचार से हीन व्यक्ति भी अपने कार्यों का मूल्यांकन कर अपने चरित्र में सुधार कर सकेगें, जिससे वे नैतिकता का पालन करते हुए यश के भागी बनेगें । समाज सुसंगठित एवं सुसभ्य बनेगा और जो लोग समाज से भटक गये हैं वे भी समाज के अंग बन जायेगें। इसके अलावा नैतिक शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति समाज को अपराध विहीन बनाएगा। समाज से अत्याचार, अनाचार, पापाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का निवारण होगा , जिससे गरीबी, अशिक्षा, असुरक्षा आदि का समापन हो सकेगा। इससे भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायता मिलेगी , सामाजिक सहभागिता का विकास होगा और वर्तमान के समस्यायों का समाधान हो सकेगा।

## 2.2 उद्देश्य

अब आप मुख्य पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा की अवश्यकता को समझ रहे होंगे। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं-

- ❖ समाज को नई दिशा देना ।

- ❖ सभी को नैतिकता से संपन्न करना।
- ❖ कार्य में निपुणता की अभिवृद्धि करना।
- ❖ पौराणिक ज्ञान को संरक्षित करना।
- ❖ समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को दूर करना।

## 2.3 प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार –

इसमें प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार किया जाएगा। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण , अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुणपुराण और ब्रह्माण्डपुराण ये अट्ठारह पुराण बतलाये गये हैं। इन पुराणों में व्याप्त नैतिक शिक्षा समाज के लिए दर्पण का काम करती है। इस ज्ञान के अभाव मे समाज शक्ति सम्पन्न नहीं बन सकेगा। इसके लिए हमें प्रत्येक पुराणों में व्याप्त नैतिक शिक्षा को जानना और समझना होगा। स्थानाभाव के कारण सभी की चर्चा यहाँ संभव नहीं है, इसलिए यहाँ केवल कुछ प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का अध्ययन किया जाएगा।

### 2.3.1. पद्मपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

पद्मपुराण एक प्रमुख पुराण है। इसके अनुसार नैतिक शिक्षा अधोलिखित है-

**1-सर्वासामेव शुद्धीनां मनः शुद्धिः प्रशस्यते।**

**अन्यथाऽलिंग्यतेऽपत्यम्, अन्यथाऽलिंग्यते पतिम्॥ पद्मपुराण ३१.२३३**

सभी प्रकार की शुद्धियों में मन की शुद्धि श्रेष्ठ होती है। मन की शुद्धि एवं अशुद्धि के कारण ही पत्नी अपने संतान का आलिंगन अलग भाव से तथा पति का आलिंगन अलग भाव से करती है।

**2 - जायते विफलं कर्मापेक्षापूर्वकारिणा॥ पद्मपुराण-12.165**

बिना विचारे काम करने वालों के कार्य विफल हो जाते हैं।

**3 - अनुकम्पा हि कर्तब्या महता दुःखिते जने। पद्मपुराण 06 .498**

महापुरुषों को दुःख में पड़े व्यक्ति पर दया करनी चाहिए।

**4 - कुपात्रेषु तथा दत्तं दानं कुफलदं भवेत्॥ पद्मपुराण 3.71**

कुपात्र अथवा बुरे व्यक्तियों को दिया गया दान अनिष्ट फल को देने वाला होता है।

**5 - क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपश्रीतम् ।। पद्मपुराण 31 .197**

क्रोध दीक्षित यानि ज्ञानी को भी मोहांध बना देता है।

**6 - निश्चयात् किं न लभ्यते। पद्मपुराण 7 .315**

निश्चय से क्या नहीं मिलता ? अर्थात् निश्चय से सब कुछ मिल जाता है।

**7- स्वार्थे पाकक्रिया हता। पद्मपुराण 1 .29**

केवल अपने लिए बनाया गया भोजन निरर्थक होता है।

**8- न करोति यतः पापं पित्रोः शोकमहोदधौ।**

**अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वद्वदन्ति सुमेधसः ।। पद्मपुराण 31 .153**

जो पुत्र अपने माता पिता को शोक सागर में नहीं डुबोता है, उस बुद्धिमान पुत्र की अपत्य संज्ञा होती है।

**9- राजा श्रेष्ठो मनुष्याणां मृगाणां केसरी यथा।**

**पक्षिणां विनतापुत्रो भवानां मानुषो यथा ।। पद्मपुराण 14 .154**

मनुष्यों में राजा वैसे ही श्रेष्ठ है जैसे पशुओं में सिंह होता है। पक्षियों में गरुण श्रेष्ठ है तथा जन्म से मनुष्य श्रेष्ठ है।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए हैं, जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1-सर्वासामेव शुद्धीनां .....शुद्धिः प्रशस्यते।

क- मनः ख- तनः, ग- स्वनः, घ- वनः।

2- अन्यथाऽलिंग्यतेऽपत्यम्, अन्यथाऽलिंग्यते .....।।

क- स्त्रियां ख- पतिम्, ग-जनम्, घ-सर्वम्।

3 - जायते .....कर्मापेक्षापूर्वकारिणा।

क- सुफलं , ख- कुफलं, ग- विफलं, घ- हिफलं।

4- अनुकम्पा हि कर्तब्या .....दुखिते जने।

क- सुहता, ख- हता, ग- विहिता, घ- महता।

5- कुपात्रेषु तथा दत्तं दानं .....भवेत्।

क- कुफलदं, ख- सुफलदं, ग- हिफलदं, घ- वीफलदं।

6- क्रोधः .....मोहान्धमपि दीक्षामुपश्रीतम् ।

क- वदति , ख- करोति, ग-गच्छति, घ- दर्शयति ।

7- निश्चयात् किं न .....।

क- क्रियते, ख- ब्रुवते,ग- लभ्यते, घ- रम्यते ।

8- स्वार्थे पाकक्रिया .....।

क- रताः, ख- मता, ग- सदा,घ- हता।

9- न करोति .....पापं पित्रोः शोकमहोदधौ ।

क- यतः, ख- मता, ग- सदा,घ- हता।

10- अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वद्वदन्ति .....।

क- वेधसः, ख- सुमेधसः, ग- मेधसः, घ- नेदसः ।

11 - राजा श्रेष्ठो मनुष्याणां मृगाणां केसरी .....।

क- तथा, ख- व्यथा, ग- यथा, घ-कथा।

12- पक्षिणां विनतापुत्रो भवानां मानुषो ..... ।

क- तथा, ख- व्यथा, ग- कथा, घ-यथा ।

### 2.3.2. श्रीमद्भागवतमहापुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा

श्रीमद्भागवत महापुराण एक प्रसिद्ध पुराण है। इसके अनुसार नैतिक शिक्षा अधोलिखित है-

1- **साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण माहात्म्य 2.79
सन्तों अर्थात् सज्जन श्रेष्ठ लोगों के दर्शन से लोक में कार्य सिद्धि होती है यानी व्यक्ति को उत्तमोत्तम का दर्शन करना चाहिए।

2- **न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो , धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 1.17.33
अधर्म का व्यवहार नहीं करना चाहिए। धर्म और सत्य का व्यवहार करना चाहिए।

3- **ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम्।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 2.9.30
विज्ञान समन्वित ज्ञान परम रहस्यात्मक होता है।

4- **मात्र आध्यात्मिकीं विद्या शमनीं सर्वकर्मणाम् ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 3.24.40
सभी प्रकार के कर्मों में शान्ति प्रदान करने वाली केवल आध्यात्मिकी विद्या है।

5- **मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 4.29.66
मनुष्य का मन सदैव पूर्व की तरह विचरण करता है।

6- **मुकुन्दसेवोपयिकं स्पृहा हि नः।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 5.19.21

बिना स्पृहा अपने भगवान मुकुन्द की सेवा करनी चाहिए।

**7- जातस्य मृत्युर्ध्रुवं एष सर्वतः ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 6.11 .32
सम्पूर्ण जगत में जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है।

**8- स रक्षिता रक्षति यो ही गर्भे ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 7.2.38.
जो गर्भ में रक्षा करता है, उसी से यह संसार रक्षित है।

**9- वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचान्स्तथा।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 8.16.49
असद् आलाप और अनुचित भोग को त्याग देना चाहिये।

**10- मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।** श्रीमद्भागवतमहापुराण 10.04.39
देवताओं के मूल भगवान विष्णु हैं ,यह सनातन धर्म कहता है।

**अभ्यास प्रश्न-** उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए हैं, जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं .....।
क- परम् , ख- नरम् ग- स्वरम् , घ- जरम्।

2- न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो ,..... सत्येन च वर्तितव्ये।
क- वर्मेण, ख-धर्मेण, ग- कर्मेण, घ-घर्मेण।

3- .....परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम्।
क- ध्यानं, ख- खानं,ग- ज्ञानं,घ- भानं।

4- मात्र आध्यात्मिकीं विद्या .....सर्वकर्मणाम्।
क- दमनीं, ख- वमनीं, ग- रमनीं घ-शमनीं

5- मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि .....।
क- शंसति ख- वनसति ,ग-नस्यति , घ- पासति

6- मुकुन्दसेवोपयिकं .....हि नः।
क- विस्पृहा, ख- स्पृहा, ग- निस्पृहा, घ- रिस्पृहा।

7- जातस्य मृत्युर्ध्रुवं एष .....।
क- पर्वतः, ख- खर्वतः, ग- सर्वतः, घ- थर्वतः।

8- स रक्षिता .....यो ही गर्भे।

क- कक्षति, ख- चक्षति, ग –भक्षति, घ- रक्षति।

9-.....सदालापं भोगानुच्चावचान्स्तथा।

क-वर्जयेद, ख-सर्जयेद,ग-गर्जयेद,घ-तर्जयेद।

10. मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र -----सनातनः।

क- घर्मः, ख- धर्मः, ग- वर्मः घ-शर्मः।

**2.3.3. श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा –**

1- कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणि एव प्रलीयते। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.24

कर्म से व्यक्ति का सृजन होता है, कर्म में ही व्यक्ति विलीन हो जाता है।

2- सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः। ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्र.ख. 17 .15

सर्वज्ञ सब कुछ देख लेता है और सनातन सर्वत्र होता है।

3- वेदेन विहितं कर्म तन्मये मंगलं परम्। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.25.7

वेद में विहित जो कर्म है, सभी मंगल करक है।

4- अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.26 . 72

किये गये अपने शुभ एवं अशुभ कर्मों को अवश्य भोगना पड़ता है।

5- हरेरुत्कीर्तनो धर्म स्वकुलोद्धारकारणात्। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.28 .2

हरि के कीर्तन से स्वकुल उद्धार होता है, इसलिए कीर्तन करना धर्म है।

6- पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.33 .7

पिता से माता का शतगुणा अधिक गौरव होता है।

7- यस्मै कस्मै न दातव्यं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.56 .44

जिस किसी को भी बड़ी से बड़ी गुप्त बातें बताना नहीं चाहिए।

8-मंगलानां प्रदाता यः सः शिवः परिकीर्तितः। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्र.ख. 2.56.63

जो मंगल को प्रदान करता है, उसे शिव कहते हैं।

9-इष्ट देवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवती भारती। तं हन्तुं नहि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवता।

ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग .ख. 3 .45 .61

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं । अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है । सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- कर्मणा .....जन्तुः कर्मणि एव प्रलीयते ।

क- जायते, ख- प्राप्यते, ग- दृश्यते, क्रियते ।

2- सर्वं पश्यति .....सर्वत्रास्ति सनातनः ।

क- कर्मज्ञः, ख- सर्वज्ञः, ग- देवग्यः ,घ- सेवाज्ञः ।

3- वेदेन विहितं -------तन्मये मंगलं परम् ।

क- शर्मः, ख- धर्मः, ग- कर्म, घ- वर्मः।

4- अवश्यमेव भोक्तव्यं .....कर्म शुभाशुभम् ।

क- रतं, ख-वृतं,ग- नित्यम्, घ- कृतं।

5- हरेरुत्कीर्तनो .....स्वकुलोद्धारकारणात् ।

क- धर्मः, ख- वर्मः, ग- कर्म ,घ- शर्म ।

6- पितुः शतगुणा .....गौरवेणातिरिच्यते ।

क- पिता, ख- माता, ग- मामा,घ- वामा।

7- यस्मै कस्मै न .....गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।

क- ध्यातब्यम्, ख- ज्ञातव्यं, ग- दातव्यं, घ- हातव्यम्।

8-मंगलानां प्रदाता यः..... शिवः परिकीर्तितः ।

क- वः, ख- नः,ग- कः, घ- सः।

9 जो मंगल को प्रदान करता है उसे .....कहते हैं ।

क- शिव, ख- विष्णु,ग- ब्रह्मा,घ- इन्द्र

10-इष्ट देवे गुरौ .....भक्तिर्भवती भारती । तं हन्तुं नहि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवता ।

क- कस्य, ख- यस्य, ग- वश्य , घ- नस्य ।

**2.3.4. श्रीब्रह्मपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा –**

**1- न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । 12.40**

भोगों की इच्छा उन्हें भोगने से कभी शान्त नहीं होती है ।

**२-धनाशा जिविताशा च जीर्यतो ऽपि न जीर्यति ।12.45**

धन और जीवन की आशा बूढ़े होने पर भी बूढी नहीं होती है।

**3- अपकारिषु यह साधुः पुण्यभाक् स उदाहृतः । 80.55**

अपकार करने वालों के साथ जो अच्छा बर्ताव करे , वहीं पुण्य का भागी बतलाया गया है।

**4- मृतास्त एवात्र यशो न एषामन्धास्त एव श्रुत वर्जिता ये । 110.156**

इस जगत में वे मरे हुए हैं जिन्होंने यश अर्जित नहीं किया है, अंधे भी वह हैं, जिन्होंने शास्त्र नहीं पढ़ा है।

**5- आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ । 125। 36**

जो अपने लिए याचना करता है, वह शोक का पात्र है।

**6 - जीवनं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा । 125।36**

जो सदा परोपकार के लिए उद्यत रहता है , उसी का जीवन सफल है।

**7 – क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः । 139-13**

मनुष्य का पहला शत्रु क्रोध है, जिसका फल कुछ नहीं है अपितु शरीर का नाश है।

**8 -तृष्णा बहुविद्या माया बन्धनी पापकारिणी ।139-14**

नाना प्रकार की तृष्णा बन्धन में डालने वाली माया है , वह पाप कराती है।

**9 – जातस्य नियतो मृत्युः पतनं तथोन्नतः। 212**. 89

जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है। जो ऊँचे चढ़ चुका है , उसका नीचे गिरना भी निश्चित है।

**10 – विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः । 212. 89**

संयोग का अवसान वियोग में ही होता है और संग्रह होने पर उसका क्षय भी निश्चित है।

**11 – परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चितः । 121.60**

विद्वान् पुरुष को कभी भी परायी स्त्री का समागम नहीं करना चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं । अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए है जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- न जातु .....कामानामुपभोगेन शाम्यति।

क- कामः, ख- दामः, ग- धामः,घ- वामः।

२-धनाशा जिविताशा च जीर्यतो sपि .....जीर्यति।

क-सः, ख- न, ग- च, घ- कः।

2- अपकारिषु ..... साधुः पुण्यभाक् स उदाहृतः ।

क-सः, ख- न, ग- यः , घ- कः ।

4-मृतास्त एवात्र यशो ..... एषामन्धास्त एव श्रुत वर्जिता ये ।

क-सः, ख- कः , ग- च, घ- न ।

5- आत्मार्थं यस्तु याचेत ..... शोच्यो हि सुरेश्वरौ ।

क-स, ख- न, ग- च, घ- कः ।

6- जीवनं सफलं तस्य ..... परार्थोद्यतः सदा ।

क-सः, ख- यः , ग- च, घ- कः ।

7 – क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाश..... ।

क-सः, ख- न, ग- नः , घ- कः ।

8 - तृष्णा बहुविद्या ..... बन्धनी पापकारिणी ।

क-सः, ख- न, ग- च, घ- माया ।

9 – जातस्य नियतो मृत्युः पतनं तथोन्न----- ।

क-तः , ख- न, ग- च, घ- कः ।

10 –विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः .....।

क-यः , ख-क्षयः, ग- नः, घ-कः ।

11 – परदारा ..... गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चितः ।

क-यः , ख- क्षयः, ग- न, घ-कः ।

## 2.3.5. श्रीनारदपुराण के अनुसार नैतिक शिक्षा –

1- श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्। पू.मा. 4.6

श्रद्धा से ही कामनाओं की सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है।

2- आचार प्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः। पू. भाग. 4.22

आचार से धर्म प्रकट होता है और धर्म के स्वामी विष्णु है।

3- नास्ति शान्ति समोबन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः। पू . भाग 6.60

शान्ति के समान कोई बन्धु नहीं है, सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है।

4- नास्त्यकीर्ति समो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः। पू. भाग 7.41

अकीर्ति के समान कोई मृत्यु नहीं है, क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है।

5- नास्ति निन्दा समं पापं नास्ति मोहसमासवः। पू.भाग. 7. 41

निंदा के समान कोई पाप नहीं है और मोह के समान कोई भय नहीं है।

6- नास्ति सूया समा कीर्तिर्नास्ति काम समोऽनलः। पू. भाग 7.42

असूया के समान कोई अपकीर्ति नहीं है, काम के समान कोई आग नहीं है।

7- नास्ति रागसमः पाशो नास्ति संग समं विषम्। पू. भाग 7.42

राग के समान कोई बन्धन नहीं है और संग अथवा आसक्ति के समान कोई विष नहीं है।

8- शौचाचार विहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम्। पू. भाग. 27.8

शौच यानी पवित्रता से हीन व्यक्ति के कर्म निष्फल हो जाते है।

9- अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

अपने किये हुए शुभ एवं अशुभ कर्मो का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

10- अर्जितं च धनं सर्वं विभवो नैव शाश्वतः।

नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः। पू. भाग 37.51

मनुष्य के कमाए हुए सम्पूर्ण धन को सदा भाई बन्धु भोगते हैं।

**अभ्यास प्रश्न-**

उपरोक्त विषय को पढकर आप अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहुविकल्पीय है , इसमें एक प्रश्न के चार उत्तर दिए गए हैं जिसमें से एक उत्तर ही सही है। सही उत्तर का चयन आपको करना है –

1- श्रद्धया साध्यते .....श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्।

क- कामः, ख- दामः, ग-धामः, वामः ।

2 -आचार प्रभवो .....धर्मस्य प्रभुरच्युतः ।

क- कर्मो , ख- धर्मो, ग- शर्मो, घ- वर्मो

3 -नास्ति .....समोबन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः।

क- क्रान्ति, ख- भ्रान्ति, ग- शान्ति, घ- कान्ति

4 नास्त्यकीर्ति .....मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।

क- कर्मो , ख- धर्मो, ग- शर्मो, घ- समो

5 – नास्ति निन्दा समं पापं .....मोहसमासवः।

क- नास्ति, ख- अस्ति , ग- स्वस्ति, घ- स्ति

6 – नास्ति सूया समा कीर्तिर्नास्ति नास्ति .....समो sनलः ।

क- दाम, ख- काम, ग- धाम , घ- नाम

7 – नास्ति रागसमः पाशो नास्ति संग .....विषम् ।

क- दमं, ख- कामं, ग- समं, घ- देवं

8 – शौचाचार विहीनस्य समस्तं..... निष्फलम्।

क- ज्ञानं, ख- ध्यानं, ग- दानं, घ- कर्म ।

9 – अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं .....शुभाशुभम् ।

क- कर्म , ख- धर्म, ग- वर्म, घ- शर्म ।

10 – अर्जितं च .....सर्वं विभवो नैव शाश्वतः ।

क- जनं, ख- धनं, ग-वनं, घ- तनं

## 3 .5 सारांश

भारतीय संस्कृती श्रुति मूला संस्कृति है, जिसमें आचार-विचार से हीन व्यक्ति को नैतिक रूप से पतित माना जाता है,इसका कारण यह है कि , वह सिद्धान्त विहीन हो जाता है, जिससे समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक शिक्षा से युक्त होना चाहिए। वास्तव में नैतिक शिक्षा का मतलब है - नीति सम्पन्न शिक्षा, यानी जीवन के सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति की एक नीति होती है अर्थात् नियम या सिद्धान्त होता है। उन नियमों या सिद्धांतों से व्यक्ति समाज में अपना

जीवन जीता है और उसी के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा होती है। बृहन्नारदीयपुराण 21/32 में कहा है – नास्ति कीर्तिसमं धनम् अर्थात् जिसके पास कीर्ति यानी यश है, उसके पास ही धन है चाहे शरीर उसका जीवित हो या न हो। शरीर तो विनाशी है, नष्ट हो जाने वाला है परन्तु ज्ञान अविनाशी है अर्थात् ज्ञान का कभी विनाश नहीं होता है। इसलिए व्यक्ति को अपना जीवन नैतिकता से सम्पन्न बिताना चाहिए, जो बिना नैतिक शिक्षा के नहीं हो सकता। प्रमुख पुराणों के अनुसार नैतिक शिक्षा का विचार ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण ,अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुणपुराण और ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणों में व्याप्त नैतिक शिक्षा समाज के लिए दर्पण का काम करती है। इस ज्ञान के अभाव में समाज शक्ति सम्पन्न नहीं बन सकेगा। इसके लिए हमें प्रत्येक पुराणों में व्याप्त नैतिक शिक्षा को जानना और समझना होगा। पद्मपुराण एक प्रमुख पुराण है इसके अनुसार-सर्वासामेव शुद्धीनां मनः शुद्धिः प्रशस्यते ।अन्यथाऽलिंग्यतेऽपत्यम्, अन्यथाऽलिंग्यते पतिम् ।सभी प्रकार की शुद्धियों में मन की शुद्धि श्रेष्ठ होती है। मन की शुद्धि एवं अशुद्धि के कारण ही पत्नी अपने संतान का आलिंगन अलग भाव से तथा पति का आलिंगन अलग भाव से करती है।जायते विफलं कर्मापेक्षापूर्वकारिणा। बिना विचारे काम करने वालों के कार्य विफल हो जाते हैं।अनुकम्पा हि कर्तब्या महता दुखिते जने। महापुरुषों को दुःख में पड़े व्यक्ति पर दया करनी चाहिए। कुपात्रेषु तथा दत्तं दानं कुफलदं भवेत्। कुपात्र अथवा बुरे व्यक्तियों को दिया गया दान अनिष्ट फल को देने वाला होता है।

इस प्रकार की अनेकानेक बातें जो नैतिक जीवन के लिए परम उपयोगी उनमें से कुछ बातों को इसमें संगृहित किया गया है। यह संग्रह सभी के लिए अत्यंत उपकारी होगा।

## 3.6 पारिभाषिक शब्दावलियां

श्रद्धया- श्रद्धा से, साध्यते – साधा जाता है , कामः- कामना , आचार- आचरण, प्रभवो- उत्पन्न , धर्मो- धर्म , अच्युतः- भगवान विष्णु , प्रकट- आविर्भाव ,नास्ति- नहीं ,अकीर्ति- कीर्ति विहीन , रिपुः- शत्रु, निन्दा- निन्दा, समं- बराबर, पापं- पाप, नास्ति- नहीं होता है , अनलः- अग्नि, राग- अनुराग, पाशो – बन्धन, विषम्- विष ,शौच-पवित्रता , विहीनस्य- हीन का , समस्तं- समस्त , कर्म- कार्य , निष्फलम्- निष्फल , अवश्यमेव- अवश्य ही , भोक्तव्यं- भोगना पड़ता है, कृतं- किया गया , शुभाशुभम्- शुभ और अशुभ, अर्जितं – कमाया गया ,च- और, धनं- धन, सर्वं- सभी, विभवो-

धन, नैव- नहीं, शाश्वतः- सदा रहने वाला, नित्यं- प्रति दिन, सन्निहितो- निकट, संग्रहः- एकत्रित करना।

## 3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

पूर्व में दिये गये सभी प्रश्नों के उत्तर यहाँ दिए जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों के उत्तर हल कर लिये होंगे। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरोंका मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर सही प्रकार से दे पाएंगे।

**3 .3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-**

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख।

3.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख,

3.3.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख, ।

3.3.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख, 11-ग,।

3.3.5 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2- ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6- ख, 7- ग,8- घ, 9- क, 10-ख, ।

## 3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- ब्रह्मपुराण
2- पद्मपुराण
3- विष्णुपुराण
4- शिवपुराण
5- भागवतपुराण
6- नारदीयपुराण
7- मार्कण्डेयपुराण
8- अग्निपुराण
9- भविष्यपुराण

10- ब्रह्मवैवर्तपुराण

11- लिंगपुराण

12- वराहपुराण

13- स्कन्दपुराण

14- वामनपुराण

15- कूर्मपुराण

16- मत्स्यपुराण

17- गरुणपुराण

18- ब्रह्माण्डपुराण

## 3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-अष्टादश पुराणों का परिचय

2- पुराण समुच्चय

3-पुराण सार

## 3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1 - ब्रह्मपुराण का परिचय दीजिये।

2- पद्मपुराण का परिचय दीजिये।

3- ब्रह्मवैवर्तपुराण का परिचय दीजिये।

4- विष्णुपुराण का परिचय दीजिये।

5- शिवपुराण का परिचय दीजिये।

6-भागवतपुराण का परिचय दीजिये

7- नारदीयपुराण का परिचय दीजिये।

8- मार्कण्डेयपुराण का परिचय दीजिये।

9-अग्निपुराण का परिचय दीजिये।

10-भविष्यपुराण का परिचय दीजिये।

# इकाई – 4 स्मृति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा

**इकाई की रूपरेखा**

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 स्मृतियों का परिचय

4.3.1 स्मृतियों में मूल्य

4.3.2 स्मृति के अनुसार नैतिक शिक्षा

4.4 पराशर स्मृति के अनुसार नैतिक शिक्षा

4.5 मनु स्मृति में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा

4.6 सारांश

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'स्मृति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा' से सम्बन्धित है। आपने इसके पूर्व वेदों तथा पुराणों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा का अध्ययन कर लिया है। अब आप स्मृति ग्रन्थों का तथा उसमें निहित नैतिक मूल्यों का अध्ययन करने जा रहे है।

स्मृति ग्रन्थों का उद्भव 'वेदों' के पश्चात् हुआ है। वेदों की काठिन्यता के कारण ऋषियों ने स्मृतियों का निर्माण किया था। भारतीय ऋषि परम्परा में श्रुति (वेद) तथा स्मृति (याद किया हुआ) का प्रचलन भी दिखलाई पड़ता है। सामान्यत: स्मृति का शाब्दिक अर्थ होता है - "याद किया हुआ"। प्रत्येक स्मृति ग्रन्थों का नाम प्राय: ऋषि नाम से जुड़ा है।

आइए हम सभी प्रमुख स्मृति ग्रन्थों के साथ-साथ उसमें प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- स्मृति क्या है?
- प्रमुख स्मृति ग्रन्थ कौन-कौन से है?
- स्मृति ग्रन्थों में निहित नैतिक मूल्य क्या हैं?
- स्मृतियों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा क्या है?
- प्राचीन ज्ञान को संरक्षित कैसे करना है।

## 4.3 स्मृतियों का परिचय

वेदों के पश्चात् भारतीय संस्कृति के आर्ष ग्रन्थों में स्मृतियों का प्रमुख स्थान है। इन्हें 'आचार संहिता' के रूप में जाना जाता है। जब ऋषियों ने देखा कि 'वेद' की भाषा सामान्य जनमानस के लिए कठिन हो रही है तो उन्होंने **'स्मृति ग्रन्थों'** का निर्माण किया। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का प्रमुख स्थान है। इनमें 'मोक्ष' को जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है, परन्तु शरीर के लिए जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति आत्मनियन्त्रण-पूर्वक करते हुए मोक्ष की ओर बढ़ने का प्रयास ही स्मृतियों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है जिन्हें क्रम से ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास कहा गया है। स्मृतियों में सभी

आश्रमों के कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया है। शिक्षा का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य आश्रम से है अतः शिष्यों के साथ गुरुजनों के भी कर्त्तव्य निर्धारित किए गए है। वर्तमान शिक्षा जगत् में कर्त्तव्यबोध की कमी छात्रों, अध्यापकों के साथ-साथ प्रशासनिक अधिकारियों में भी दृष्टिगोचर होती रहती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित नैतिक-मूल्यों का प्रयोग शिक्षा में व्याप्त अनैतिक आचरणों को दूर करके छात्रों में अध्ययन के प्रति निष्ठा जागृत की जा सकती है। इसलिए स्मृतियों में निहित ज्ञान तत्व का बोध के दृष्टिगत यहाँ उसकी मीमांसा की जा रही है।

स्मृति का शाब्दिक अर्थ है –जो याद किये जाने योग्य हो। स्मृतियाँ हमारे धर्म का मूल उपादान है। जिस प्रकार श्रुति को वेद माना जाता है उसी प्रकार धर्मसूत्र भी स्मृति ग्रन्थ मानी जाती है।

आचार्य मनु का कथन है कि – ''स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही जानना चाहिए।'' वेद को श्रुति तथा धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए वे सभी विषयों में प्रतिकूल तर्क के योग्य नहीं हैं क्योंकि उन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

स्मृति के अन्तर्गत षड्वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र इन सभी विषयों का अन्तर्भाव किया गया है।

स्मृतियों पर धर्मशास्त्र का प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है। धर्मशास्त्र उन शास्त्रों को कहा जाता है जिनमें, प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था, नीति,सदाचार आदि शासन सम्बन्धी नियमों का वर्णन किया जाता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि स्मृतियों की रचना धर्मसूत्रों के आधार पर की गयी हैं।

स्मृतियाँ हमारी संस्कृति, आचार, व्यवहार को स्मरण रखने में सहायक है। पी0वी0काणे ने अपने ग्रन्थ धर्मशास्त्र के इतिहास में स्मृति शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि स्मृति शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक अर्थ में यह वेद वाङ्मय से इतर ग्रन्थों यथा पाणिनि के व्याकरण श्रौत, गृह्य, धर्मसूत्रों , महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बद्ध है किन्तु संकीर्ण अर्थ में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है।

तैत्तरीय आरण्यक में स्मृति की व्याख्या करते हुए कहा है कि – ''**स्मृतिरनुमेयश्रुतिमूलं मन्वादिशास्त्रम्। प्रत्यक्षं सर्वपुरूषाणां श्रोत्रेण ग्राह्यं वेद वाक्यं च। अनुमान: शिष्टाचार:। तेन हि मूलभूतं श्रुतिस्मृतिलक्षणं प्रमाणनुमीयते। तदेतत्स्मृत्यादिचतुष्मवगतिकारण भूतं प्रमाणम्। एतै: स्मृत्यादिभि: सर्वैरेव प्रमाणैरादित्यमण्डलं विधास्यते प्रमीयते, यादृशमिदं मण्डलं भवति यथा च प्रवर्तते यथा वा मन्वन्तरादिभेदाभिन्नं कालं प्रवर्तयति यथा चोदकसृष्टयादिना विश्मुत्पादयति तत्सर्व स्मृत्यादिप्रमाणसिद्धम्।**''

गौतम धर्मसूत्र में **स्मृति** को धर्म का उपादान माना है।

वाचस्पत्यम् के अनुसार 'स्मृति' स्त्रीलिंग शब्द है तथा 'स्मृ धातु', क्तिन् प्रत्यय से मिलकर बना है।

स्मृति का पहला अर्थ उन्होंने किया है – अनुभूतवस्तुन उद्बोधक – सहकारणेन संस्कारधीने ज्ञानभेदे। अनुभूत की हुई वस्तु उद्बोधन प्रकट या जागृत करने में साधन रूप तथा संस्कार के अधीन है वह 'स्मृति' है।

स्मृतियाँ व्यक्ति के कार्यों पर नियन्त्रण लगाकर, अनुशासित करके, व्यक्ति को समाज से अलग नहीं रखती अपितु स्मृतियाँ व्यक्ति को सुसंस्कृत, सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक होती है।

**स्मृति ग्रन्थ का तात्पर्य** उन रचनाओं से है जो प्राय: श्लोकों में है तथा उन्हीं विषयों का प्रतिपादन करती हैं जिनका विवेचन धर्मसूत्रों में किया गया है। स्मृतियाँ प्राय: पद्य में तथा धर्मसूत्र गद्य में हैं। भाषा की दृष्टि से धर्मसूत्रों की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट तथा विद्वज्जनों की भाषा है किन्तु स्मृति की भाषा अत्यन्त सरल एवं आमजन की बोलचाल की भाषा है। विषय वस्तु की दृष्टि से स्मृतियाँधर्मसूत्रों से अधिक व्यवस्थित तथा सुगठित है।

**स्मृतियों की संख्या** –

स्मृतियों की निश्चित संख्या के बारे में कई मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं। डॉ. कोणे के अनुसार मुख्य स्मृतियों की संख्या 18 है – मनुस्मृति, वृहस्पति स्मृति, दक्ष स्मृति, गौतम स्मृति, यम स्मृति, अंगिरा स्मृति, योगीश्वर स्मृति, प्रचेता स्मृति, शातातप स्मृति, पराशर स्मृति, संवर्त स्मृति, उशना स्मृति, लिखित स्मृति, शंख स्मृति, अत्रि स्मृति, विष्णु स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति तथा हारीत स्मृति।

**याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार** –

**मन्त्रत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽग्रिा।**

**यमापस्तम्बसंवर्ता: कात्यायनवृहस्पत।।**

**पराशव्यासंशंखलिखिता वृक्षगौतमौ।**

**शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजका:।।**

अष्टादश स्मृति में निम्न प्रमुख स्मृतियों का समावेश किया गया है – अत्रि संहिता, विष्णु प्रोक्त धर्म, हारीत स्मृति, औशनस स्मृति, अंगिरा रस स्मृति, संवर्त स्मृति, लघु यम स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति, वृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति, पराशर स्मृति, दक्ष स्मृति, गौतम स्मृति, शातातप स्मृति।

वीरमित्रोदय के अनुसार स्मृतिकारों की संख्या 21 है –

**वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामह:।**

**विष्णु काष्णाजिनि: सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवल।।**

**जमदग्निर्भरद्वाज: पुलस्य पुलह: क्रतु:।**

**आत्रेयश्च गवेयश्च मरीचिर्वत्स एव च।**

**पारस्करश्चष्यरृंगे वैजावापस्तथैव च।**

**इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिता:।।**

इसके अतिरिक्त उप स्मृतियों के भी नाम गिनाये गये हैं –

**जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षिकाश्यपौ।**

**व्यास सत्कुमारश्च शन्तनुर्जनस्तथा।।**

**व्याघ्र: कात्यायश्चैव जातूमकण्य कपिंजल:।**

**बौधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च।।**

**पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मति विधायका:।**

स्मृति सन्दर्भ के प्रथम भाग में – मनुस्मृति, नारदीय, अत्रि स्मृति, अत्रि संहिता, प्रथम विष्णु स्मृति, विष्णु स्मृति, द्वितीय भाग में – पराशर स्मृति, वृहत्पाराशर स्मृति, लघुहारीत स्मृति, वृद्धहारीत स्मृति, तृतीय भाग में – याज्ञवल्क्य स्मृति, कात्यायन स्मृति, लिखित स्मृति, शंखलिखित स्मृति, वसिष्ठ स्मृति, लघुव्यास संहिता, व्यास स्मृति, बौधायन स्मृति, चतुर्थ भाग में – गौतम स्मृति, वृद्ध गौतम स्मृति, यम स्मृति, लघुयम स्मृति, वृद्धद्यम स्मृति, अरूण स्मृति, पुलस्त्य स्मृति, बुध स्मृति, वसिष्ठ स्मृति नं. -2 वृहद्ययोगियाज्ञवल्क्य स्मृति, ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता काश्यप स्मृति व्याघ्रपाद स्मृति पंचम भाव में - कपिल स्मृति, वाधूल स्मृति, विश्वामित्र स्मृति, लोहित स्मृति, नारायण स्मृति, शाण्डिल्य स्मृति, कण्व स्मृति, दाल्भ्य स्मृति, अंगिरस स्मृति नं.-2 पूर्वांगिरसम् ख. उत्तरांरिसम् षष्ठ भाग में – लौंगाक्षि स्मृति तथा मार्कण्डेय स्मृति का संग्रह है।

स्मृतियों की संख्या में एक मत नहीं है। स्मृतियों की संख्या 100 के समकक्ष मानी जाती है। जिनमें 18 स्मृतियाँ प्रमुख हैं। उपस्मृतियों की संख्या अधिकतम है।

आचार्य मनु ने श्रुति तथा स्मृति महत्ता को समान माना है। गौतम ऋषि ने भी यही कहा है कि **'वेदो धर्ममूल तद्धिदां च स्मृतिशीले'।** हरदत्त ने गौतम की व्खाख्या करते हुए कहा कि स्मृति से अभिप्राय है मनुस्मृति से। परन्तु उनकी यह व्याख्या उचित नहीं प्रतीत होती क्योंकि स्मृति और शील इन शब्दों का प्रयोग स्रोत के रूप में किया है, किसी विशिष्ट स्मृति ग्रन्थ या शील के लिए नहीं। स्मृति से अभिप्राय है वेदविदों की स्मरण शक्ति में पड़ी उन रूढ़ि और परम्पराओं से जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं किया गया है तथा शील से अभिप्राय है उन विद्वानों के व्यवहार तथा आचार में उभरते प्रमाणों से। फिर भी आपस्तम्ब ने अपने धर्म-सूत्र के प्रारम्भ में ही कहा है - **'धर्मज्ञसमय: प्रमाणं वेदाश्च'।** वेद भारतीय संस्कृति का मूलभूत आधार हैं। मनुष्य के समस्त जीवन मूल्यों का समावेश वेदों में निहित है। हजारों वर्षों से वेदों पर ही मानव जीवन का अस्तित्व टिका हुआ है। वेदों का प्रधान विषय ज्ञान, कर्म एवं उपासना है किन्तु इसके अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक उन्नति का विस्तृत विवेचन किया गया है। वैदिक संस्कृति में न्याय, समानता, विश्वबन्धुत्व जैसे मानवीय मूल्यों का समावेश है। वेदों में धर्म का कोई व्यवस्थित उल्लेख नहीं है।

किन्तु स्मृतियाँ वेदों से अधिक सुगठित शास्त्र है। वेदों के समान ही स्मृतियों में भी धर्म, शिक्षा, संस्कार, आश्रम व्यवस्था, राजधर्म आदि विषयां का चरणबद्ध प्रतिपादन किया गया है। सामाजिक व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए मनु ने आश्रम व्यवस्था के समान वर्ण व्यवस्था को भी महत्त्वपूर्ण माना है। वेद एवं मनु की वर्ण व्यवस्था जन्मगत न होकर कर्मगत है। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्मृतियां वेदों का अनुकरण करती हैं इसलिए स्मृतियां वेदानुवर्ती हैं। मनु ने मनुष्य का जो धर्म कहा है, वह सब धर्म वेदों में कहा गया है। वे मनु सब वेदों के अर्थों के में ज्ञाता हैं। वेदों तथा स्मृतियों में कहे गये धर्म का अनुष्ठान करता हुआ मनुष्य इस संसार में यश पाता है F तथा धर्मानुष्ठाजन्य स्वकर्मादि के अनुत्तम सुख को पाता है। ऋग्वेद में भी वेदानुकूल कर्म करने का आदेश दिया है। "हे देवों ! हम न कभी प्राकृतिक नियमों को तोड़ते हैं तथा न कभी इन नियमों को होने देते हैं। वेद के मन्त्रों के आदेशानुसार आचरण करते हैं। मनु ने वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत क्रमशः वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, S वानप्रस्थ तथा सन्यास) के विशिष्ट धर्मों का परिगणन कराया है। र ज वर्ण का वर्णन मनु से पूर्व सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है। यही कथन मनु ने भी कहा है। मनु भी धर्म के उपदेश के लिए वेद को मुख्य प्रमाण मानते हैं। जहां पर श्रुति तथा स्मृति के विधानों में मतभेद मिलता हो वहां पर परस्पर श्रुति को ही प्रमुखता दी गई है। सं क अ - जिस प्रकार मनु ने जीवन में अनुशासित मर्यादाएं निर्धारित की उसी प्रकार का वर्णन ऋग्वेद में भी दृष्टिगोचरचित होता है। "विद्वानों ने जीवन की सात मर्यादाएं निर्धारित की हैं। ये सात मर्यादाएं हैं- सुरापान, जुआ खेलना, नारी व्यसन, मृगया, कटु वचन, कठोर दण्ड व दूसरे पर मिथ्या आरोप। इनकी उ तथा कदापि नहीं जाना चाहिए। इनसे बचने वाला प्रतिष्ठा व उच्च स्थिति को पाता है।" संस् जन जिस प्रकार स्मृतियों में आचार का अधिक वर्णन किया है उसी प्रकार वेदों में भी आचार की शिक्षा दी जाती है। "चरित्र रक्षा के बारे में यजुर्वेद में कहा गया है कि - "मैं तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे प्राणों को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरी आंखों को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे कानों को शुद्ध करता हूँ। मैं उत्त तेरी नाभि को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे आचरण तथा पैरों को शुद्ध करता हूँ।" ऋग्वेद में दान का महत्व वर्णित किया गया है। दान सभी इष्ट सुखों को देने वाला है तथा मनुष्य की सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का मूल वेदों में ही निहित है।

**मनुस्मृति के 9 टीकाकार हैं** – मेघातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, सर्वज्ञ नारायण, राघवानन्द, नन्दन, रामचन्द्र, मणिराम, भारूचि। इनमें मेघातिथि प्राचीन भाष्यकार माने जाते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार – ब्रह्माण्ड पुराण में याज्ञवल्क्य के पिता का नाम ब्रह्मरात उल्लिखित है। याज्ञवल्क्य के गुरु का नाम वैशम्पायन था। याज्ञावल्क्य स्मृति पर 7 टीकायें हैं- विश्वरूप की बालक्रीड़ा, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा, शूलपाणि की दीपकलिका, अपरार्क, नन्दपण्डित की मिताक्षरा, विश्वेश्वर भट्ट की सुबोधिनी, बालम्भट्ट की बालम्भट्टी टीका प्रसिद्ध है।

**पराशर स्मृति** – 'कलौ पाराशर: स्मृति:' के अनुसार कलियुग में पराशर स्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण

है।

माधवाचार्य द्वारा इसकी टीका लिखी गयी है।

**नारद स्मृति** - नारद स्मृति में 18 प्रकरण तथा 1028 श्लोक हैं। नारद स्मृति तथा मनुस्मृति में बहुत कुछ समानता है। नारद स्मृति पर असहाय ने टीका लिखी है।

**हारीत स्मृति** – हारीत स्मृति में आचार पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसी कारण इसके व्यवहार संबंधी उद्धरण अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं हारीत स्मृति के दो भाग है – लघु हारीत एवं वृद्ध हारीत।

**गौतम स्मृति** – याज्ञवल्क्य ने गौतम को धर्मशास्त्रकार माना है। गौतम स्मृति 21 अध्यायों में मिलती है। वसिष्ठ धर्मसूत्र तथा गौतम धर्मसूत्र के बहुत से सूत्र एक ही है।

**अंगिरा स्मृति** – याज्ञवल्क्य ने 20 धर्मशास्त्रकारों में अंगिरा का भी उल्लेख किया है। इस स्मृति के भी 2 भाग है। इस स्मृति ग्रन्थ पर कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

## 4.3.1 स्मृतियों में मूल्य -

भारतीय संस्कृति में मूल्य के स्थान पर 'आचार' शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग होता रहा है। सकारात्मक सोच की प्रधानता के कारण 'आचार' शब्द केवल सदाचार के लिए प्रयुक्त हुआ, दुराचार या कदाचार के लिए नहीं। फलस्वरूप इसे धर्म से जोड़ दिया गया। जिसके कारण मनु ने आचार को ही सबसे बड़ा (परम) धर्म स्वीकारा है-

**आचारः परमो धर्मः, श्रुत्युक्त: स्मार्त एव च।**

**तस्मादस्मिन् सदा युक्तौ, नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।। (मनुस्मृति 1-109)**

अर्थात वेदों तथा स्मृतियों द्वारा निर्दिष्ट आचरण (कर्म) ही सब से बड़ा धर्म है। अतः बुद्धिमान एवं संस्कार युक्त पुरुष को सदेव इसमें लगा रहना रहना चाहिए। ये ही आचार कार्य तथा अकार्य का निर्णय भी करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनु ने आचार को ही मूल्य के रूप में निरूपित किया है जिसका सुप्रभाव चारों आश्रमों में कल्याणमय जीवनयापन के लिये आवश्यक है। अर्बन द्वारा वर्गीकृत आठों प्रकार के मूल्यों में अधिकांश मनुस्मृति में उपलब्ध हैं। ये शिक्षा तथा छात्र के आचरण में गुणवत्ता की अभिवृद्धि में सहायक हो सकते हैं।

**याज्ञवल्क्य स्मृति** का तो प्रथम अध्याय ही आचाराध्याय नाम से प्रसिद्ध है जिसमें मानव के सम्पूर्ण जीवन में सुख-समृद्धि हेतु आचरण का प्राधान्य व्याख्यापित है। याज्ञवल्क्य में आचरण को धर्म के मूल के रूप में प्रतिपादित किया है

**श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ च प्रिग्रयमात्मनः।**

**सम्यक् सङ्क्कल्पजः कामी धर्ममूलमिदं स्मृतम्।।। (याज्ञ0 1-7)**

वशिष्ठ स्मृति में भी आचरण की प्रशंसा की गई है तथा दुराचरण की निन्दा की गई है-

**आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।**

**हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह न नश्यप्रतेत्य चेहेहति (वशिष्ठ,6-1)**

दुराचारी के सम्बन्ध में इस प्रकार कहते है –

**दुराचारो हि पुरूषौ लोके भवति निन्दितः।**

**दुःखमागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च। (वसिष्ठ – 1-6)**

मानव के दीर्घ जीवन हेतु भी सदाचार की संस्तुति दी गयी है –

**सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।**

**श्रद्धानोऽनुसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति। (वसिष्ठ 1-8)**

प्रिय शिक्षार्थियों। आप सभी को यह विदित होना चाहिये कि जब हम नैतिकता की बात करते हैं तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में नैतिकता का होना परमावश्यक है। नैतिक शिक्षा के अभाव में मनुष्य का जीवन संतुलित, संयमित तथा प्रगतिशील नहीं हो सकता। अतएव मानवमात्र के पास नैतिक ज्ञान का होना परमावश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि नैतिक शिक्षा क्या है? क्या वास्तव में नैतिक शिक्षा का ज्ञान दिया जा सकता है? नैतिक शिक्षा का स्रोत क्या है? आदि इत्यादि अनेक प्रश्न हो सकते हैं।

ध्यातव्य हो कि प्रत्येक मनुष्य को उसके आरम्भिक जीवन में ही उसके माता-पिता, भाई-बहन, गुरु, परिजन तथा मित्रों के द्वारा नैतिक शिक्षा व्यवहार में प्रदान की जाती है और उसके आधार पर ही प्रत्येक मनुष्य अपना जीवनयापन कर लेता है। किन्तु विकराल कलिकाल के कुप्रभाव एवं पाश्चात्य अपसंस्कृति को अपनाने से या अत्यधिक व्यवहार में लाने से व्यावहारिक दृष्टिकोण से नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। कदाचित् इसी स्थिति को ही देखकर शिक्षण संस्थानों में नैतिक शिक्षा को एक विषय के रूप में पाठ्यसामग्री में जोड़ने का कार्य किया जा रहा है।

यहाँ इस इकाई में हम स्मृति ग्रन्थों में प्रतिपादित 'नैतिक शिक्षा' का यथासंभव उल्लेख करने का प्रयास कर रहे हैं।

## 4.3.2 स्मृति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा –

स्मृति काल तक प्राचीन नैतिक मूल्य इतने परिवर्तित हो चुके थे तथा भोगवाद की प्रवृत्ति इतनी बढ़ चुकी थी की उन मूल्यों की सुरक्षा के लिए दण्डनीति, अधिकाधिक शक्तिशाली होती गयी। प्राचीनकाल में जो ग्रन्थ श्रुति की कोटि में तो नहीं आते थे, किन्तु प्रामाणिक माने जाते थे वे ही धर्मशास्त्र या स्मृति की कोटि में आने लगे। स्मृतियों की संख्या सुनिश्चित नहीं है, परन्तु वे व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन को सुव्यवस्थित करने वाले समय-समय पर विरचित ग्रन्थ है। बाद में वेदों को प्रमाण मानने वाले ग्रन्थ अथवा उनका अनुसरण करने वाली स्मृतियाँ ही मुख्य रूप से नियामक

बन गई है। धर्म और नैतिक नियमों के लिए वेद के कथन ही प्रमाण माने जाने लगे। स्मृतियों में धर्म के सामान्य दस लक्षण निर्धारित किये हैं जो इस प्रकार है – धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विधा, सत्य एवं अक्रोध।

सदाचार सम्पन्न दरिद्र को भी अन्यों से श्रेष्ठ माना गया है, और आचार को ही परम धर्म स्वीकारा गया है। अत: स्मृतियों में बताया है कि आचारी व्यक्ति को सुख की प्राप्ति होती है तथा दूराचारी व्यक्ति को दु:ख की प्राप्ति होती है धर्म के अनुसार ही धन का संचय करना चाहिये, यही नैतिकता है। क्योंकि अनैतिकता अधर्म से संचय किया हुआ धन व्यक्ति को कष्ट देता है।

स्मृति ग्रन्थों में धर्म, अर्थ, काम को त्रिवर्ग के समान ही श्रेयस्कर माना गया है। तथा धर्म-विरूद्ध अर्थ और काम के त्याग का निर्देश दिया गया है। मनुस्मृति का कथन है कि सतयुग में पवित्रता, सात्विकता प्रधान थी, त्रेतायुग में आत्मज्ञान, द्वापर में यज्ञ, पूजा और कलियुग में दान ही श्रेष्ठ फलदायक है। इससे स्पष्ट है कि युगानुसार नैतिक मूल्यों में परिवर्तन होता रहा तथा मूल्यों का ह्रास भी होता गया तथा मूल्य बनते भी गये और कालानुरूप प्राचीन मूल्य लुप्त होते गये। इसी प्रकार युग के अनुसार धर्म में भी परिवर्तन होता गया।

स्मृतियों में कहा गया है कि सत्य और प्रिय बोलना चाहिये। असत्य भाषण द्वारा आत्मा का तिरस्कार नहीं करना चाहिये वह साक्षी है वास्तविक रूप में आत्मा शुद्ध तथा पवित्र है। आत्मा के अन्दर संस्कार होते हैं। इसीलिए आत्मा को साक्षी बताया गया है। सत्य वक्ता की ही प्रतिष्ठा और सम्मान मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में सत्यभाषण के अपवाद भी बताये गये है - जैसे विवाह के समय गाने जाने वाले गीत, प्राण संकटकाल में, समस्त धन के अपहरण के अवसर पर तथा ब्राह्मण की रक्षा, देश सेवा आदि पर झूठ बोला जा सकता है। लेकिन किसी की आत्मा को अकारण कष्ट देना उचित नहीं माना जा सकता है।

स्मृति ग्रन्थों में इन्द्रिय संयम को मुख्य माना गया है। आत्म संयम से इन्द्रिय का संयम होता है। स्मृति ग्रन्थों में यदि नैतिक शिक्षा की बात करें तो निम्नलिखित तत्व सामने आते हैं –

1. **दान** - स्मृतिकाल में दान का विशेष महत्व बताया गया है। व्यक्ति जो दान करता है वह दान उस व्यक्ति को उसके अगले दूसरे जन्म में प्राप्त होता है। दान करने से मन शुद्ध होता है। दान के लिए भी कहा गया है कि सुयोग्य को ही दान करना चाहिये, अन्यथा दान का फल नहीं प्राप्त होता है। दान करने वालों में राजा हरिश्चन्द्र, दानवीर कर्ण आदि का नाम अग्रगण्य है। मनुष्य को अपने कुल धन का कम से कम 10 प्रतिशत दान अवश्य करना चाहिये। **'पराशरस्मृति'** ग्रन्थ में दान के सम्बन्ध में लिखा है कि –

**अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम्।**
**अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम्।।**

अर्थात् स्वयं जाकर के जो दान दिया जाता है, वह उत्तम होता है। और अपने यहाँ बुलाकर जो दान दिया जाता है वह मध्यम होता है। याचना करने पर जो दान दिया जाता है वह साधारण होता है और सेवा कराकर जो दान दिया जाता है, वह निष्फल है।

2. **अतिथि सत्कार** – भारतीय गृहस्थ जीवन में 'अतिथि सत्कार' का विशेष महत्व बतलाया गया है। जिस मनुष्य में अतिथि सत्कार का नैतिक भाव न हो, वह मनुष्य पशु के समान है। भारतीय शास्त्रों में वर्णित है – 'अतिथि देवो भव:' अर्थात् अतिथि को देवता के समान बतलाया गया है। अत: प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने जीवन में अतिथि सत्कार आवश्यक रूप से करना चाहिये।
3. **कर्म** – स्मृतियों में कर्म की प्रधानता बतलाते हुए कहा गया है कि मनुष्य को ईश्वरीय प्रदत्त जीवन का सदुपयोग करते हुए सदाचरण एवं धर्मविहित कर्म करना चाहिये। भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद एवं शास्त्र निहित कर्म को ही 'प्रधान कर्म' बतलाया गया है। अत: उनका अनुकरण करते हुए कर्म करना सदैव कल्याणकारी होगा। यद्यपि कर्म की मीमांसा अति विस्तृत है। इसलिए यहाँ केवल नैतिक कर्म की बात करना ही श्रेयस्कर है। ईश्वर के द्वारा जिसका जो कर्म निर्धारित किया गया है अथवा गृह में जो कार्य जिसके लिए निर्धारित है उसे वह कार्य अवश्य करना चाहिये। सदकर्म सदैव कल्याणकारी ही होता है।
4. **धर्माचरण** – प्रत्येक मनुष्य को धर्म का आचरण करना चाहिये। धर्म का आचरण करने से जीवन पथ प्रशस्त होता है।

**धर्म के 10 लक्षण बतलाये गये हैं – धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध।**

प्रत्येक मनुष्य के लिए उक्त यह 10 धर्म के लक्षण बतलाये गये हैं। नैतिक शिक्षा के दृष्टिकेण से यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह इसका अपने जीवन में आत्मसात करें।

## 4.4 पराशरस्मृति ग्रन्थ के अनुसार नैतिक शिक्षा –

**सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।**
**आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने।।**

अर्थात् सन्ध्या , स्नान, जप, हवन और देवताओं की पूजा, बलिवैश्व पूर्वक आतिथ्य सत्कार ये छ: कर्म प्रत्येक व्यक्ति के करने योग्य है।

### वर्णाश्रम व्यवस्था के कर्म

**शमो दमस्तप: शौचं क्षान्तिर्राजवमेव च।**

**ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।**

अर्थात् शम, दम, तप, शुद्धि, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान विज्ञान और आस्तिकता यह ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म बतलाये गये है।

**शौर्यं तेजो धतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।**

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध से विमुख न होना, दान और ईश्वर भाव ये क्षत्रियों का स्वाभाविक कर्म है।

**लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम्।**
**कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता।।**

अर्थात् लाभ प्राप्त करना, रत्नों का क्रय-विक्रय, गायों का परिपालन, कृषि-कर्म और वाणिज्य यह वैश्यवृत्ति बतायी गयी है।

**शूद्रस्य द्विज-शुश्रुषा परमो धर्म उच्यते।**
**अन्यथा कुरुते किंचितद् भवेत्तस्य निष्फलम्।।**

अर्थात् द्विज सेवा शूद्र का परम धर्म है। सेवातिरिक्त कर्म करना सम्पूर्णतया निष्फल कहा गया है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि उक्त ये समस्त वर्णाश्रम के कर्म पराशरस्मृति ग्रन्थ के अनुसार बतलाये गये हैं। आज के समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को अधिकांश लोग मानते है और नहीं भी मानते है। अत: ज्ञान के लिए इनका वर्णन यहाँ आवश्यक है। कर्मों का ग्राह्य एवं अग्राह्य अवस्था आप सभी सुधी पाठकों की सोच पर निर्भर है। वह प्रत्येक कर्म के लिए स्वतंत्र है। यहाँ इस इकाई में केवल स्मृति ग्रन्थ की चर्चा की जा रही है।

वर्तमान समाज में युवावर्ग विविध कारणों से 'आत्महत्या' जैसा प्रयास करते है, जो शास्त्रीय दृष्टि से अनुचित है। विधाता द्वारा प्रदत्त 'मानव सृष्टि' कई जन्मों के शुभ कर्म का फल रूप में संभव हो पाता है इसलिए हमारा नैतिक दायित्व बन जाता है कि हम उस मानव रूपी शरीर की रक्षा करें और उसका उपयोग सही मार्ग और दिशा में ही करें। उसे आत्महत्या जैसे प्रयास से कभी भी नष्ट न करें। पराशरस्मृति ग्रन्थ में भी आत्महत्या करने वालों के लिए कहा है कि -

**अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात्।**
**उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते।।**
**पूयशोणितसम्पूर्ण त्वन्धे तमसि मज्जति।**
**षष्टिवर्षसहस्राणि नरकंप्रतिपद्यते।।**
**नाशौचं नोदकं नाग्नि नाश्र पातं च कारयेत्।**
**वोढारोऽग्निप्रादातारः पाशच्छेदकरास्तथा।।**
**तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयन्तीत्येवमाह प्रजापतिः।**

अत्यन्त अभिमान से, क्रोध से, स्नेह से अथवा भय से स्त्री अथवा पुरुष फांसी लगाकर मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसकी गति के सम्बन्ध में बताते हैं। वह प्राणी पीब तथा रक्त से भरे हुए 'अन्धतामिस्र' नामक नरक में जाकर गिरता है तथा ६० हजार वर्ष तक नरक में निवास करता है। फाँसी लगाकर मृत्यु को प्राप्त करने वाले प्राणी की अशुद्धि न माने, जलदान भी न करे, अग्नि-संस्कार भी न करे और न आँसू गिरावे। क्योंकि ऐसे प्राणी के शरीर को ले जाने वाले तथा दाह-संस्कार करने वाले और पाशच्छेद करने बाले तप्तकृच्छ्र के आचरण से शुद्ध होते हैं। ऐसा प्रजापति ने कहा है।

**गृहस्थों के लिए नैतिक कर्म -**

**न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः।**
**स भवेत्कर्मचाण्डालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः।।**

जो मनुष्य गृहस्थ होते हुए श्रेष्ठ कर्मों को नहीं करता और न अग्नि-होत्र ही करता है और जो धर्म से पराङ्मुख है, वह कर्म करते हुए भी चांडाल होता है।

यहाँ यह समझना चाहिये कि प्रत्येक गृहस्थ का नैतिक दायित्व है कि वह धर्मादि कर्मों का आचरण करें, यदि संभव हो तो अग्निहोत्र कार्य भी करे। अन्यथा विधि (विधाता) ने जो कर्म उसके लिए निर्धारित किये है उसका कर्तव्यपरायणता के साथ निर्वहन करें।

**अब आप सबके ज्ञानार्थ मनुस्मृति में कथित नैतिक ज्ञान का वर्णन यहाँ किया जा रहा है -**

## 4.5 मनुस्मृति में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा –

प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक दायित्व है कि वह अपने माता-पिता, गुरु, भाई-बहन, परिजनों या आत्मजनों तथा वृद्धों का सम्मान करें। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में भी लिखा गया है -

**गुरु का सम्मान -**

**शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।**
**शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्।।**

अर्थात् गुरुजन जिस शय्या या आसन पर बैठे हों उस पर नहीं बैठना चाहिये। अगर आप गुरु के समीप शय्या या आसन पर बैठे हो तो तत्काल उठकर उन्हें प्रणाम करें। यह नैतिक आचरण में होना चाहिये।

**अपने से बड़ो (गुरु-माता-पिता वृद्धादि) का सम्मान करना -**

**ऊर्ध्वं प्राणाद्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।**
**प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।।**

बड़े के आने पर छोटे के प्राण ऊपर को उच्छवसित हो उठते हैं। अतः उठकर खड़े होने और प्रणाम करने से वे प्राण फिर अपने ठिकाने पर आ जाते हैं।

**बड़ों का सम्मान करने का फल -**

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

**चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ।।**

नित्य बड़ों की सेवा करने वाले अभिवादनशील पुरुष की आयु, विद्या, यश, और बल ये चारों बढ़ते हैं। इसलिए उक्त कार्य करना सभी के लिए नैतिक शिक्षा है।

**अतिथि सम्मान -**

**संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।**

**अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।।**

स्वयं आये हुए अतिथि को बैठने के लिये आसन और पैर धोने के लिये जल देना चाहिये तदनन्तर यथाशक्ति विधिपूर्वक व्यंजनादि से युक्त अन्न खिलाना चाहिये।

**शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।**

**सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ।। १०० ।।**

फसल कटने पर खेत में बचे हुए अन्न को चुनकर उस पर निर्वाह करने वाला और नित्य पञ्चाग्नि सेवन करने वाला ऐसा पुरुष भी हो पर उसके यहाँ अतिथि के आने पर यदि उस अतिथि का सत्कार न हो तो यह अतिथि उसका सारा पुण्य ले लेता है।

**तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।**

**एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।**

अर्थात् अतिथि के बैठने लिये आसन,ठहरने की जगह पैर धोने के लिये पानी और मधुर और सत्यवाणी इन चारों वस्तुओं का अभाव तो सज्जनों के यहां कभी नहीं रहता। यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि अतिथि के सम्मान में बैठने के लिए आसन, आराम करने के लिए स्थान, जल-भोजनादि तथा बोलचाल में मधुरवाणी का प्रयोग इन सभी का होना आवश्यक है। अतिथि सम्मान में नैतिकता के साथ इसका सम्मिश्रण होना चाहिये, व्यवहार होना चाहिये।

**अतिथि की परिभाषा -**

**एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।**

**अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।।**

दूसरे के घर पर एक रात जो ब्राह्मण निवास करे वह अतिथि है। उसका रहना नित्य नहीं होता इसी से वह अतिथि कहलाता है। (अर्थात् जो एक तिथि में किसी के यहाँ रहकर दूसरी तिथि को न रहे।)

**अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।**

**काले प्राप्तास्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ।।**

सूर्यास्त समय में यदि कोई अतिथि (अभ्यागत) घर पर आवे तो उसे नहीं टालना चाहिये। अतिथि समय पर आवे या असमय में गृहस्थ को अवश्य उसे भोजन करा देना चाहिये।

**अतिथि सत्कार का लाभ -**

**न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।**
**धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ।।**

जो पदार्थ अतिथियों को न परोसा जाय उसे गृहस्थ को नहीं खाना जाए। अतिथि-पूजन से धन, यश और आयु की वृद्धि होती है तथा जन्मान्तर में स्वर्गसुख प्राप्त होता है।

**आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्।**
**उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम्।।**

आसन, विश्राम स्थान, शय्या, अनुगमन और परिचर्य्या-ये अतिथियों की योग्यता देखकर करे जो जैसे हों उनके साथ वैसा ही व्यवहार करें अर्थात् एक साथ अधिक आये अतिथियों में बड़े छोटे का ख्याल रखकर उनके सम्मान की व्यवस्था करे।

**वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत्।**
**तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्नं बलिं हरेत्।।**

वैश्वदेव कर्म समाप्त हो जाने पर यदि दूसरा अतिथि आवे तो उसे भी पुनः भोजन बना करके यथाशक्ति भोजन करावे। पर उस अन्न से "बलिहरण" नहीं करे।

**यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।**
**स पर्यायेणयातीमान्नरकानेकविंशतिम् ।।**

कृपण और शास्त्र की आज्ञा न मानने वाले राजा से जो दान लेता है वह क्रम से इन इक्कीस नरकों में गिरता है। अर्थात् इस प्रकार के राजा से दान नहीं लेना चाहिये।

**तामिस्रमन्धतामिस्रं नरकं कालसूत्रं च**
**महारौरवरौरवौ महानरकमेव च ।।**
**संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ।**
**संहतं च सकाकोलं कुडमलं प्रतिमूर्तिकम्।।**
**लोहंशकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ।**
**असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च।**

तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कालसूत्र, महानरक।संजीवन, महावीचि, तपन, संप्रतापन, संहात, सकाकोल, कुड़मल, प्रतिमूर्तिक।लोहशंकु, ऋजीष, पन्था, शाल्मली, नदी, असिपत्र वन और लोहदारक (ये वे इक्कीस नरक हैं)।

**स्व रक्षा के लिए गमन हेतु -**

**दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान्।**

**ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ।।**

अपनी रक्षा के लिये देवताओं धार्मिकों ब्राह्मणों और गुरुओं तथा राजा या शासक के दर्शनार्थ (अमावास्यादि) पर्वों में उनके सम्मुख जाय।

**श्रेष्ठ आचरण -**

**अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।**

**कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्।।**

गुरु या श्रेष्ठ पुरुष घर पर आवें तो उठकर उन्हें प्रणाम करें अपना आसन बैठने को दे और अञ्जलिबद्ध होकर आगे खड़ा रहें। जब वे जाने लगें तब कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे जाय।

**श्रुतिस्मृत्युदितं सम्मङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु।**

**धर्ममूलं निषेक्त सदाचारमतन्द्रितः।।**

श्रुति और स्मृति में जो सदाचार कहा गया है जो अपने कर्म में सम्यक् रूप से मिला हुआ है और धर्म का मूल है आलस्यरहित होकर उस सदाचार का पालन करना चाहिये।

**आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।**

**आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।**

आचार से दीर्घ आयु मिलती है आचार से अभिमत सन्तानें प्राप्त होती हैं आचार से अक्षय धन लाभ होता है। आचार से अशुभ लक्षणों का नाश होता है।

**दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।**

**दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।**

दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित, सर्वदा दुःखी, रोगी और अल्पायु होता है।

**सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।**

**श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।**

सब लक्षणों से हीन होने पर भी जो पुरुष सदाचारी और श्रद्धालु होता है तथा दूसरों के दोष नहीं कहा करता वह सौ वर्ष जीता है।

**यद्यत्परवंश कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।**

**यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः।।**

जो-जो कर्म पराधीन हो उस-उस कर्म को यत्न करके छोड़ दे और जो-जो कर्म अपने अधीन हो उस-उस कर्म का यत्नपूर्वक अनुष्ठान करे।

**यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।**

**तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्।**

जिस कर्म के करने से अन्तरात्मा को परितोष हो वह यत्नपूर्वक करे। इसके विपरीत जो कर्म हो। (अर्थात् जो कर्म करने से चित्त को शान्ति न मिले) वह न करे।

**आचार्य च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम्।**

**न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः।।**

उपनयन पूर्वक वेदों का अध्याय करने वाला आचार्य वेदार्थ व्याख्याता पिता माता गुरु ब्राह्मण गाय और तपस्वी-इनकी हिंसा न करे (दुःख न दे-विरुद्धाचरण न करे)।

**नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।**

**द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ।।**

नास्तिकता (ईश्वर में अविश्वास) वेद और देवताओं की निन्दा ईर्ष्या-भाव दम्भ अभिमान क्रोध और क्रूरता न करो।

**परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत्।**

**अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्धा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ।।**

दूसरे को मारने के लिये क्रुद्ध होकर लाठी न उठावे और न मारे पुत्र तथा शिष्य के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति को दण्डप्रहार न करे। किन्तु पुत्र तथा शिष्य को अनुशासन के लिये (अवश्य) ताड़न करे।

**ब्राह्मणायावगूर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया।**

**शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते।**

जो द्विजाति ब्राह्मण को मारने की इच्छा से क्रुद्ध होकर लाठी उठाता है वह सौ वर्ष तक तामिस्र नामक नरक में चक्कर खाता हैं। ममता या मानापमान का दुःख नहीं होता)। जो इस आध्यात्मिक विषय को नहीं जानता वह ब्रह्मध्यानात्मक क्रिया का फल नहीं पाता।

**अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।**

**आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्।।**

यह और देवता सम्बन्धी वेदमन्त्रों और वेदान्त में कहे आध्यात्मिक विषयों को सदा जपे।

**धर्म के दस लक्षण -**

**सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।**

**गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्विभर्ति हि।।**

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**

**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।**

सन्तोष, क्षमा, मन को दबाना, अन्याय से किसी की वस्तु न लेना शारीरिक पवित्रता इन्द्रियों का निग्रह (विषयों से उन्हें रोकना) बुद्धि (शास्त्रादि तत्व का ज्ञान) विद्या (आत्मबोध) सत्य (यथार्थ कथन) क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण हैं।

**दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।**

**अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।**

जो ब्राह्मण दश-विध धर्मों को समझने का यत्न करते हैं और समझ कर उनका अनुष्ठान करते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

**दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः।**

**वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः।।**

एकाग्रचित्त होकर दश-विध धर्मों का अनुष्ठान करता हुआ विधि पूर्वक वेदान्त सुनकर ऋणमुक्त द्विज संन्यास ग्रहण करे।

**संन्यास्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ।**

**नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ।।**

गृहस्थोचित सब कर्मों को छोड़ प्राणायाम आदि द्वारा कर्मदोषों को सामादिक चार उपायों में राष्ट्र-वृद्धि के लिये पण्डित लोग साम और दण्ड की सदा प्रशंसा करते हैं।

**यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।**

**तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।**

खेत निराने वाला जैसे तृण को खोद कर फेंक देता है और धान्य की रक्षा करता है वैसे राजा राष्ट्र की रक्षा करे और शत्रुओं का संहार करे।

**मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।**

**सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।।**

जो राजा अज्ञान से भले-बुरे का विचार न कर अपनी प्रजा को सताता है वह शीघ्र ही अपने बान्धवों सहित राज्य और जीवन से हाथ धो बैठता है।

**शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।**
**तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।।**

शरीर को क्षीण करने से जैसे प्राणियों के प्राण नष्ट होते हैं वैसे राजाओं के प्राण प्रजापीड़न से नष्ट होते है।

**राष्ट्रस्य संग्रहे संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।**
**सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते।।**

राष्ट्र रक्षा के लिये राजा सदा यह उपाय करे जो राजा भलीभांति अपने राष्ट्र की रक्षा करता है वह सुखी होता है।

**द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।**
**तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्।।**

दो गाँवों के या तीन गाँवों के या पाँच गाँवों के या सौ गाँवों के बीच में राज्य की रक्षा के लिये रक्षक-समूह को नियुक्त करे।

**ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं**
**तथा विंशतींशं शतेशं च सहस्त्रपति मेव च ।।**

प्रत्येक गाँव में एक-एक मुखिया नियुक्त करे फिर दश गाँवों का बीस गांवों का सौ गाँवों का और सहस्र गाँवों का एक-एक अधिकारी पृथक् नियुक्त करे।

**ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्यामिकः शनकैः स्वयम्।**
**शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिने ।।**
**विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।**
**शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्।।**

गाँव में जो कोई दोष उत्पन्न हो (और उसके निवारण में यदि ग्रामाधिपति असमर्थ हो तो) उसके निवारणार्थ ग्रामाधिपति दशग्रामाधिपति से कहे (यदि वह उसका प्रतिकार न कर सके तो) वह विंशतिग्रामाधिपति से कहे वैसे ही विंशतिपति शतपति से और शतपति सहस्रपति से निवेदन करे।

**यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः।**
**अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ।।**

ग्रामवासियों से प्रतिदिन जो कुछ अन्न पान ईंधन आदि राजा के लिये दिया जाय वह ग्रामाधिकारी अपनी वृत्ति के लिये ले।

**दशी कु तुलं युज्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ।**

**ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्त्राधिपतिः पुरम्।।**

दशग्रामाधिकारी एक कुल को बीस गाँवों का अधिकारी पाँच कुल को सौ गाँवों का अधिकारी एक गाँव को और सहस्राधिकारी एक साधारण नगरको राजा की आज्ञा से अपने निर्वाह के लिये ले।

**अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः प्रपञ्च चापराः।**

**प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः।।**

प्रत्येक प्रकृति के मन्त्री देश दुर्ग कोश और सैन्य ये पांच प्रभेद और होते हैं। १२ मूल प्रकृतियां और ६० उनके प्रभेद सब मिल कर ७२ हुए जो संक्षेप से कहे गये ।

**अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेवच।**

**अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम्।।**

विजय की इच्छा करने वाले राजा को अपने राज्य की चतुःसीमा से संबद्ध राज्यों के राजाओं को शत्रुप्रकृति जानना चाहिये। उनके सेवक सहायकों को भी शत्रु ही जानना चाहिये। शत्रु प्रकृति राज्यों के परे जो राज्य हों उन्हें मित्र प्रकृति जानना चाहिये। पर शत्रु और मित्र इन दोनों के परे जो राजा हो उसे उदासीन प्रकृति जानना चाहिये।

**तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः**

**व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च।**

उन सब राजाओं को साम दाम दण्ड और विभेद आदि दो एक या सब उपायों से वश में करे अथवा केवल दण्ड से या केवल साम से उन्हें अपने वश में करे।

**संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**

**द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ।।**

सन्धि (मेल) विग्रह (विरोध) यान (शत्रु के देश पर चढ़ाई करना) आसन (उपेक्षण) द्वैधीभाव (बल को दो भागों में बांटना) और संश्रय (शत्रु से सताये जाने पर प्रबल राजा का आश्रय लेना) इन छः गुणों की सदा चिन्ता करे।

**संभूय च समुत्थानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।**

**दत्तस्यानपकर्म दत्तस्यानपकर्म च।।**

**वेतनस्यैव चादानं संविदश्च**

**चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।**

**क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ।।**

**सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।**

**स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च।।**

**स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।**

**पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थितावहि।।**

(ये जो अट्ठारह मार्ग हैं) उनमें प्रथम १ ऋण लेना २ किसी के पास थाती रखना ३. मालिक से बिना पूछे कोई चीज बेचना ४ साझे का व्यवहार ५: दी हुई वस्तुओं को फिर ले लेना ६ वेतन न देना ७. की हुई व्यवस्था से मुकरना ८ खरीद बिक्री में किसी बात का अन्तर पड़ जाना ९. स्वामी और पशुपालकों में विवाद १०. सीमा की तकरार ११ गाली गलौज देना या मार-पीट करना १२. चोरी १३ साहस अर्थात् जबर्दस्ती किसी की चीज ले लेना १४ पराये पुरुष के साथ स्त्री का सम्पर्कए १५ पति-पत्नी के परस्पर धर्म की व्यवस्थाए १६ पैतृक आदि धन का विभागए १७ जुआ १८ पशु-पक्षियों को लड़ाना व्यवहार के ये ही १८ स्थान हैं।

**एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।।**

**धर्म शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ।।**

प्रायः इन (१८) स्थानों में विवाद करने वाले मनुष्यों के धर्म कानिर्णय अनादि परंपरागत धर्म का आश्रय करके करना चाहिये।

**यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।**

**हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।।**

जिस सभा में सभासदों के देखते हुए भी अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य मारा जाता है वहाँ उस अन्यायजनित पाप से सभासद ही नाश को प्राप्त होते हैं।

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**

**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।**

नष्ट हुआ धर्म ही नाश करता है और रक्षित किया धर्म ही रक्षा करता है। नष्ट धर्म कहीं हमें नष्ट न करेएश इसलिये धर्म का कभी नाश न करना चाहिये।

**वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।**

**वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्म न लोपयेत्।।**

(सब कामनाओं की सिद्धि की वर्षावृष्टि करने वाला) वृष यही भगवान धर्म है। उस धर्म का जो नाश करता है उसे देवता वृषल कहते हैं। इसलिये धर्म का कभी लोप न करे।

**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।**

एक धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने पर भी साथ जाता है। और सब तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।

**तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम्।**
**तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।**

तप और विद्या दोनों मानव के लिए परम कल्याणकारक हैं। तप से पाप का नाश होता है और विद्या (ब्रह्मज्ञान) से मुक्ति मिलती है।

**प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।**
**त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिममीप्सता ।।**

धर्मशुद्धि चाहनेवाले पुरुष को प्रत्यक्ष अनुमान और विविध प्रकार के आगम शास्त्र इन तीनों (प्रमाणों) को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

## बोध प्रश्न

1. भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थों की संख्या कितनी है?

   क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5

2. जीवन का अन्तिम लक्ष्य कहा गया है –

   क. धर्म ख. अर्थ ग. काम घ. मोक्ष

3. स्मृति का शाब्दिक अर्थ है –

   क. चेतना ख. जो भूल जाने वाले हो ग. जो याद किये जाने योग्य हो घ. कोई नहीं

4. वेदांगों की संख्या कितनी है।

   क. 2 ख. 3 ग. 6 घ. 5

5. डॉ. कोणे के अनुसार स्मृतियों की संख्या कितनी है।

   क. 18 ख. 20 ग. 25 घ. 100

6. वीरमित्रोदय के अनुसार प्रमुख स्मृतिकारों की संख्या कितनी है।

   क. 21 ख. 22 ग. 23 घ. 24

7. 'वेदो धर्ममूल तद्विदां च स्मृतिशीले' किसका कथन है

क. हारीत ख. गौतम ग. पराशर घ. मनु

8. मनुस्मृति के प्रमुख टीकाकारों की संख्या कितनी है।

क. 8 ख. 9 ग. 14 घ. 5

9. नारद स्मृति में कितने श्लोक है-

क. 1000 ख. 1028 ग. 1004 घ. 2000

10. हारीत स्मृति में विशेष बल निम्न में किस पर दिया गया है –

क. सत्य ख. आचार ग. नैतिकता घ. कोई नहीं

## 4.6 सारांश

वेदों के पश्चात् भारतीय संस्कृति के आर्ष ग्रन्थों में स्मृतियों का प्रमुख स्थान है। इन्हें 'आचार संहिता' के रूप में जाना जाता है। जब ऋषियों ने देखा कि 'वेद' की भाषा सामान्य जनमानस के लिए कठिन हो रही है तो उन्होंने **'स्मृति ग्रन्थों'** का निर्माण किया। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का प्रमुख स्थान है। इनमें 'मोक्ष' को जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है, परन्तु शरीर के लिए जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति आत्मनियन्त्रण-पूर्वक करते हुए मोक्ष की ओर बढ़ने का प्रयास ही स्मृतियों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है जिन्हें क्रम से ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास कहा गया है। स्मृतियों में सभी आश्रमों के कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया है। शिक्षा का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य आश्रम से है अतः शिष्यों के साथ गुरुजनों के भी कर्त्तव्य निर्धारित किए गए है। वर्तमान शिक्षा जगत् में कर्त्तव्यबोध की कमी छात्रों, अध्यापकों के साथ-साथ प्रशासनिक अधिकारियों में भी दृष्टिगोचर होती रहती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित नैतिक-मूल्यों का प्रयोग शिक्षा में व्याप्त अनैतिक आचरणों को दूर करके छात्रों में अध्ययन के प्रति निष्ठा जागृत की जा सकती है। इसलिए स्मृतियों में निहित ज्ञान तत्व का बोध के दृष्टिगत यहाँ उसकी मीमांसा की जा रही है।

स्मृति का शाब्दिक अर्थ है –जो याद किये जाने योग्य हो। स्मृतियाँ हमारे धर्म का मूल उपादान है। जिस प्रकार श्रुति को वेद माना जाता है उसी प्रकार धर्मसूत्र भी स्मृति ग्रन्थ मानी जाती है।

आचार्य मनु का कथन है कि – ''स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही जानना चाहिए।'' वेद को श्रुति तथा धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए वे सभी विषयों में प्रतिकूल तर्क के योग्य नहीं हैं क्योंकि उन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

स्मृति के अन्तर्गत षड्वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र इन सभी विषयों का अन्तर्भाव किया गया है।

## 4.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्मृति - जो याद किए जाने योग्य हो।

पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना

धर्ममूल - धर्म का मूल

वेदांग – वेद का अंग। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष

आचार – आचरण

दृष्टिगोचर – दिखलाई पड़ना

नैतिक – शास्त्रसम्मत, नीतिसम्मत

## 4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ग
4. ग
5. क
6. क
7. ग
8. ख
9. ख
10. ख

## 4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मनु स्मृति

पराशर स्मृति

याज्ञवल्क्य स्मृति

हारीत स्मृति

वीरमित्रोदय

नारद स्मृति

## 4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्मृति को परिभाषित करते हुए उसका विस्तृत वर्णन करें।
2. प्रमुख स्मृतियों का उल्लेख करें।
3. पराशर स्मृति के अनुसार नैतिक शिक्षा का वर्णन करें।
4. मनुस्मृति में प्रतिपादित नैतिक बल का विश्लेषण करें।
5. स्मृतियों पर निबन्ध लिखिये।

# इकाई - 5 भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा

**इकाई की रूपरेखा**

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 नीति ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

5.3.1 भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा

5.3.1.1 चाणक्य नीति के अनुसार नैतिक शिक्षा

5.3.1.2 नीतिशतकम् के अनुसार नैतिक शिक्षा

5.3.1.3 विदुरनीति एवं महाभारत के अनुसार नैतिक शिक्षा

5.3. 1.4 *अन्यान्य नीति ग्रन्थ और उसमें प्रतिपादित नैतिक शिक्षा*

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.7 सहायक पाठ्यसामग्री

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई VAC-10 'भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा' से सम्बन्धित है। आपने इसके पूर्व वेदों, पुराणों तथा स्मृति ग्रन्थादि में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा का अध्ययन कर लिया है। अब आप नीति ग्रन्थों का तथा उसमें निहित नैतिक मूल्यों का अध्ययन करने जा रहे है।

प्राय: समस्त नीति ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के मूल्यों का प्राण माना जाता है। भारतीय ऋषियों द्वारा नीति ग्रन्थों का निर्माण स्व-स्व कालखण्डानुरोधेन मानव जीवन तथा सामाजिक उत्थान के लिए ही किया गया है।

अत: आइए हम सभी प्रमुख नीति ग्रन्थों के साथ-साथ उसमें प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

## 5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- नीति क्या है?
- प्रमुख नीति ग्रन्थ कौन-कौन से है?
- नीति ग्रन्थों में निहित नैतिक मूल्य क्या हैं?
- नीति ग्रन्थों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा क्या है?
- प्राचीन ज्ञान को संरक्षित कैसे करना है।

## 5.3 नीति ग्रन्थों का परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों। स्मृति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा के पश्चात् आप सभी भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा का अब यहॉ अध्ययन करने जा रहे हैं -

नीति काव्य का उद्भव विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से माना गया है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत में धर्म और नीति का सदुपदेश सम्मिलित है। इन नीति ग्रन्थों में तत्व ज्ञान और वैराग्य का सुन्दर सन्निवेश है। इनमें प्रायः सभी धार्मिक विश्वासों का उल्लेख और उपदेश है। इन नीति ग्रन्थों में लोक जीवन के व्यवहार में आने वाली बातों पर विचार करने के साथ ही साथ जीवन की असारता का निरूपण कर मानव मात्र को 'मोक्ष' के साधन का उपदेश भी है। भारतीय नीति के अन्तर्गत धर्म एवं दर्शन भी समाहित हो जाते हैं इसीलिए नीति काव्य

का उद्भव स्मृति ग्रन्थों से भी माना जाता है। महाभारत के दो बड़े प्रसंगों की श्रीमद्भगवद्गीता एवं 'विदुरनीति' तो स्वयं ही नीति काव्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भगवद्गीता तो भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है जिसके माध्यम से हमें जीवन की असारता, आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मवाद आदि की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार विदुर नीति में भी कुल धर्म, स्वधर्म, राजधर्म, विश्व धर्म व आत्म धर्म के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि द्वारा विरचित 'नीतिशतकम्', आचार्य चाणक्य द्वारा रचित 'चाणक्य नीति' और विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र (हितोपदेश) भी नीति शास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ है। आप सभी शिक्षार्थियों को यह भी ज्ञात होना चाहिये कि हिन्दी साहित्य में भी नीति के कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।

## 5.3.1 भारतीय नीति ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा

### 5.3.1.1 चाणक्य नीति के अनुसार नैतिक शिक्षा

नीति काव्य का सर्वप्रथम संग्रह 'चाणक्य संग्रह' है। इसी को 'चाणक्य नीति' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें व्यवहार सम्बन्धी पद्यों के साथ राजनीति सम्बन्धी श्लोकों का सद्भाव भी प्राप्त होता है। इन नीति विषयक सदुपदेशों का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रख्यात गुरू अमात्य चाणक्य के साथ जुड़ा है।

*नाना शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम्*
*सर्वबीजमिदं शास्त्रं चाणक्यं सारसंग्रहम्॥*

इसमें अनुष्टुप छन्द में निबद्ध 108 श्लोक हैं। वस्तुत: सम्पूर्ण 'चाणक्य नीति' ग्रन्थ में नैतिक शिक्षा का ही उल्लेख मिलता है। अत: प्रमुखता के दृष्टिकोण से तथा आमजनमानस के जीवन में उपयोगिता के दृष्टिगत यहाँ नीतिगत कुछ श्लोकों का यहाँ वर्णन करने जा रहे हैं।

- **आत्मरक्षा -**

आपदार्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥

अर्थात् आपत्तिकाल के लिए धन संग्रह करना चाहिये और धन से अधिक स्त्री की धर्म रक्षा करनी चाहिये और इन दोनों से अधिक आत्मरक्षा करनी चाहिये। आशय यह है कि सर्वप्रथम आत्मरक्षा करनी चाहिये। तत्पश्चात् धन और स्त्रीधर्मादि की।

**तत्काल परित्याग कर देने वाले स्थान -**

यस्मिन् देशे न सम्मनो न वृत्तिर्न च बान्धवा:।
न च विद्याऽगम: कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्।।

अर्थात् जिस देश में मान-सम्मान, आजीविका, गुरु, माता-पिता, विद्या प्राप्ति के कोई भी साधन उपलब्ध नहीं हो उस स्थान का तत्काल परित्याग कर देना चाहिये।

**अविश्वसनीय तत्व –**

**नखीनां च नदीनां च श्रृंगीणां शस्त्रपाणिनाम्।**
**विश्वासो नैव कर्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च।।**

अर्थात् आचार्य चाणक्य के अनुसार सिंह, व्याघ्रादि नाखून रखने वाले प्राणियों एवं नदियों तथा सींगधारी सांड़ पशु, शस्त्रधारियों का, दुष्ट स्त्री का और राजकुलों पर विश्वास कदापि नहीं करना चाहिये।

**कार्यसिद्धि में सहायक**

**मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत्।**
**मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये चाऽपि नियोजयेत्।।**

अर्थ है कि यदि कार्य से पूर्व विचार द्वारा कोई योजना मन में निर्मित हो तो उसे वाणी द्वारा प्रकट नहीं करना चाहिये या उस विचार को साकार रूप देने तक उसे गुरु मन्त्र की भांति मन में ही विद्यमान रखना चाहिये। इससे कार्यसिद्ध होता है।

**दुर्लभता -**

**शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।**
**साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।।**

श्लोकार्थ है कि प्रत्येक पर्वत में माणिक्य रत्न प्राप्त नहीं होते हैं और इसी प्रकार प्रत्येक गज के मस्तक पर मुक्तामणि नहीं प्राप्त होती। जगत् में मनुष्यों की कमी न होने पर भी अच्छे मनुष्य सभी जगह नहीं मिलते। ठीक इसी प्रकार कुछ पेड़ तो हैं, परन्तु सभी जंगलों मं चन्दन के पेड़ नहीं होते।

**संतति शिक्षा** –

**माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठित:।**
**न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।**

अर्थात् ऐसे माता-पिता अपने पुत्र के वैरी ही माने जाते हैं, जो उन्हें शिक्षित नहीं करते हैं। अशिक्षित पुत्र तथा मनुष्य बुद्धिमान मनुष्यों के समूह में इस प्रकार शोभावान् नहीं होते, जिस प्रकार हंसों के संगठन में बगुला सर्वथा अच्छा प्रतीत नहीं होता। अतएव अपने संतति को अवश्यमेव शिक्षित करना चाहिये।

**ग्रहण करने योग्य उत्तम आचरण -**

**आचार: कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्।**
**सम्भ्रम: स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्।।**

अर्थात् पवित्र आचरण से अपने वंश की ख्याति, उत्तम संभाषण से अपने देश की ख्याति, आदर-सत्कार से प्रेम की ख्याति और भोजन से शरीर की ख्याति में वृद्धि होती है।

**संतति से आचरण** –

**लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।**
**प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।**

संतान को पॉच वर्ष की अवस्था तक लाड़-स्नेह करना चाहिये, उसके पश्चात् दस से पन्द्रह वर्ष तक स्नेह के साथ दण्डित भी करना चाहिये। तत्पश्चात् सोलहवें वर्ष में और उसके पश्चात् मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये।

**महत्ता** –

**अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।**
**दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्।।**

अभ्यास विमुख शास्त्र विष पान के समान है। अजीर्ण भोजन अर्थात् अपच भोजन विष के तुल्य है। दरिद्र के लिए सभा में विराजमान होना विष के ही तुल्य है और वृद्ध मनुष्य के लिए नवयौवन स्त्री भी विषवत् ही है।

**रक्षा** –

**वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।**
**मृदुना रक्ष्यते भूप: सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम्।।**

अर्थात् धर्म की सुरक्षा धन के द्वारा विद्या की सुरक्षा निरन्तर अभ्यास के द्वारा, राजनीति की सुरक्षा कोमल और दयापूर्ण आचरण द्वारा तथा गृह-गृहस्थी की सुरक्षा कुलीन नारी के द्वारा होती है।

'चाणक्य नीति' के बारे में विविध प्रकार के तथ्यों का उल्लेख मिलता है। उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

**चाणक्यसार संग्रह**

इसमें तीन शतक हैं। प्रत्येक शतक में पूरे एक सौ अनुष्टुप विद्यमान है। इसमें राजनीति के विस्तृत उपदेशों के साथ ही साथ लोक नीति की भी सुन्दर शिक्षा दी गई है-

***असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्***
***काश्यां वासः सतां संगो गंगारम्भः शम्भु सेवनम् ॥***

उपर्युक्त श्लोक में काशी वास को प्राथमिकता दी गई है। हो सकता है कि इसका संग्रहकर्ता कोई काशीवासी हो।

***लघु चाणक्य***

पंचम वाचना लघु चाणक्य नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक अध्याय में 10 से 13 तक श्लोक हैं। यह वाचना भारत में अल्पज्ञात ही रही परन्तु यूरोप में यह काफी प्रख्यात रही। गेल नेस नामक यूनानी संस्कृतज्ञ ने मूल संस्कृत का यूनानी भाषा में अनुवाद करके 1825 ई0 में इसे प्रकाशित किया।

चाणक्य राजनीति शास्त्र

यह वाचना भी भारत में प्रसिद्ध नहीं हुई अपितु नवम शताब्दी में तिब्बती तंज रू में अनुदित होकर संग्रहीत हुई। इस तिब्बती अनुवाद का पुनः संस्कृत में अनुवाद शान्ति निकेतन से प्रकाशित हुआ है। इसमें 8 अध्याय हैं तथा 5382 श्लोक हैं परन्तु 3972 श्लोक ही उपलब्ध हैं।

यह कहना अति कठिन है कि इन सभी ग्रन्थों के रचयिता महात्मा चाणक्य ही थे परन्तु इन ग्रन्थों में दी गई शिक्षा, उपदेश व नीति वाक्य मानव जीवन के लिए सर्वथा उपादेय हैं : सार्वभौम हैं तथा इनमें अनुभव एवं बुद्धि की सूक्ष्माभिव्यक्ति हुई है। यथा -

*नास्ति विद्यासमं चक्षुनास्ति सत्यसमं तपः*
*नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥*

अर्थात् विद्या के समान नेत्र नहीं है , सत्य के समान तप नहीं है , राग के समान अन्य कोई दुःख नहीं है तथा त्याग के समान अन्य कोई सुख नहीं है।

नात्यन्त सरलैभाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥

अर्थात् अत्यन्त सरल (सीधा) नहीं होना चाहिए। यह कथन कितना सटीक है क्योंकि यदि हम वन में जाकर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि सीधे वृक्ष तो लोगों द्वारा काट दिए जाते हैं परन्तु टेढे मेढे वृक्ष नहीं काटे जाते।

भाव यह है कि संसार में छद्म प्रवृति के लोगों के द्वारा प्रायः सीधे सादे लोग शोषित ही होते हैं।

**नीतिद्विषष्ठिका**

सुन्दर पाण्ड्य द्वारा रचित नीतिद्विषष्ठिका ही नीति विषय प्राचीन ग्रन्थ है जिसके विषय में हमें निश्चित जानकारियां मिलती है। इसमें उपदेशात्मक शैली में 116 श्लोक है। सुभाषित ग्रन्थकारों न इस रचना के कई श्लोक उद्धृत किये हैं परन्तु ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं किया है। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों के इनका उल्लेख किया है जिसका विवरण निम्नलिखित है-

1. **जनाश्रय** (600 ई0 ) ने इसकी एक पंक्ति अपने छन्दोविचित में उदधृत की है।
2. **कुमारिल** (650 ई0) एवं शंकराचार्य ने उनके अन्य ग्रन्थों के भी श्लोक उद्धृत किये हैं।
3. **बोधिचर्यावतार** - शांतिदेव जिनका समय 600 ई0 के लगभग है , द्वारा रचित बोधिचर्यावतार ग्रन्थ भी नीतिकाव्य है। इसमे बोधिसत्व (ज्ञानप्राप्ति के इच्छुक ) के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। मानव मात्र से प्रेम करने के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। इस ग्रन्थ पर कई टीकाएं भी लिखी गईं। शांतिदेव ने 6 शिक्षा समुच्चय व सूत्र समुच्चय भी लिखे परन्तु ये रचनाएं कम प्रसिद्ध हुई।

### 5.3.1.2 'नीतिशतकम्' में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा -

भर्तृहरि विरचित 'नीति शतक', नीति काव्यों में श्रेष्ठ स्थान रखता है। इन पद्यों में उन्होने अपने लौकिक व्यावहारिक ज्ञान का सूक्ष्म परिचय देते हुए अपने अनुभवों को अत्यन्त सहज , सरल , स्वाभाविक

एवं सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया है। मानव जीवन से सम्बन्धित ऐसा कोई भी विषय , कोई भी समस्या नहीं है जिसकी चर्चा इस ग्रन्थ में न की गई हो उनकी दृष्टि में सच्चा मानव वही है जो अपने मन में परम संतोष की अनुभूति करता हो। वे एक ओर तो कर्म सिद्वान्त की वकालत करते हैं तो दूसरी और भाग्य को भी अनदेखा नहीं करते हैं। कुछ विषयों पर उनकी धारणा आज भी सत्य प्रतीत होती है। यथा - इस संसार में सभी का उपचार संभव है परन्तु मूर्ख का नहीं।

***सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्***

विवेक का परित्याग करने वालों का पतन सैकड़ो प्रकार से होता है। यथा –

*विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः*

शरीर को आभूषण नहीं सुसज्जित करते अपितु सुसस्कृत वाणी ही असली आभूषण है -

*वाण्येकाष् समलंकरोति पुरूषं या संस्कृतार्धायते*
*क्षीयन्ते खलुभूषणानि सततंवाग्भूषणं भूषणम्।*

मानवीय व्यवहारों और प्रवृतियों और सदाचार का भर्तृहरि ने इतना सूक्ष्म और व्यापक अध्ययन किया कि उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। इन तत्वों को कवि ने आत्मसात् किया था और स्वयं के जीवन में उनका आचरण किया था। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में उनके नीति वचनों का साहित्य में उनके नीतिवचनों का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ। शब्द रचना, अलंकार विधान, छन्दों विरचना आदि सभी दृष्टियों से यह शतक परिपुष्ट है।

शतकत्रय में नीतिशतक मध्यम और प्रमुख शतक है। प्रथम शतक श्रृंगारशतक है, जिसमें नारीसौन्दर्य, कामप्रभाव, ऋतु परिवर्तन, प्रेम तथा भौतिक संयोग का चित्रण है और अन्तिम वैराग्यशतक में लौकिक भोगों से विरक्ति एवं क्षणभंगुर संसार के सुखों से दूर रहने की भावना का विस्तृत विवरण है। नीतिशतक में लोक-जीवन की अनुभूति और उससे प्राप्त शिक्षा का निचोड़ है। अपने अनुभव से प्राप्त और संघटित नीतिवचन जीवन मार्ग के अन्धकार को दूर करने में शाश्वत ज्योति के सदृश है। इनसे ज्ञात होता है कि राजर्षि महाकवि भर्तृहरि ने लोक जीवन को अत्यन्त निकट से देखा था और उससे अनुभव प्राप्त किया था। अतल तक पहुँचने वाली अपनी पैनी दृष्टि से उन्होंने जीवन तत्व खोज निकाला था। नीतिशतक में अत्यन्त सुबोध और प्रांजल शैली में महाकवि ने वह अनुभव , वह तत्व उपस्थित कर दिया है। धीर, पण्डित, सज्जन, धूर्त, खल आदि की विशेषताओं और उनके इतिकृत्यों के अनेक चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने कर्तव्याकर्तव्य को स्पष्ट रूप में विवेचित कर दिया है। उनके ये नीतिवचन

जीवन पथ को सुगम बनाने में बड़े सहायक हो सकते है। ये ज्ञान के निचोड है। आप नीतिशतकम् के श्लोकों में नैतिक शिक्षा को इस प्रकार देख सकते है -

विवेकशील आचरण -

**शिर: शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं।**
**महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।**
**अधोऽधो गंगेयं पदमुपगता स्तोकमथवा।**
**विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपात: शतमुख:।।**

अर्थात् गंगा स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरती है, सिर से पर्वत पर गिरती है, उँचे पर्वत से पृथ्वी पर गिरती है और पृथ्वी से समुद्र में गिरती है। इस प्रकार से उसकी अधो-अधो गति होते चली जाती है। इसी प्रकार विवेकभ्रष्ट मनुष्य भी सदैव अधोगति को प्राप्त होता चला जाता है। यहॉ आपको यह समझना चाहिये कि आप विवेकशील प्राणी बने।

ग्रहणीय -

**येषां न विद्या तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म:।**
**ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।**

अर्थात् जिस मनुष्य के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म है, वे इस मृत्युलोक में पृथ्वी के भार के समान मनुष्य रूप में पशु ही विचरते हैं। अर्थात् विद्यादि गुणों से हीन मनुष्य पशुतुल्य है और पृथ्वी पर उसका जीवन भारस्वरूप ही है।

**नीर-क्षीर- विवेक -**

**अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव।**
**हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।।**
**न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां।**
**वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थ:।।**

अर्थात् अत्यन्त कुपित होने पर विधाता हंस का कमलवन में निवास और विलास नष्ट कर सकता है, परन्तु वह उसकी नीर-क्षीर-विवेकी प्रसिद्ध पाण्डित्यपूर्ण कीर्ति का अपहरण नहीं कर सकता है।

**विद्या का महत्व** –

**विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं।**
**विद्या भोगकरी यश:सुखकरी विद्या गुरुणां गुरु।।**

**विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं।**
**विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीन: पशु:।।**

अर्थात् विद्या मनुष्य का अधिक रूप तथा गुप्तधन है, भोग, यश और सुख को उत्पन्न करनेवाली है, गुरुओं की गुरु है। विदेश में बंधु के समान है, परम देवता है। विद्या ही राजाओं द्वारा पूज्य है, धन नहीं। विद्या विहीन मनुष्य पशु के समान है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को विद्या ग्रहण करनी चाहिये।

धन का महत्व -

**यस्यास्ति वित्तं स नर: कुलीन: स: पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञ:।**
**स एव वक्ता स च दर्शनीय: सर्वे गुणा: कांचनमाश्रयन्ति।।**

जिसके पास धन है, वही मनुष्य कुलीन है, वही विद्वान है, वही शास्त्रज्ञ है, वह गुणी है, वही वक्ता है, वही दर्शनीय है। इससे सिद्ध होता है कि समस्त गुण स्वर्ण के ही आश्रय में रहते है।

**महात्माओं का स्वाभाविक गुण** –

**विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम:।**
**यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।**

अर्थात् विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, सभा में वाणी का चातुर्य, युद्ध में शौर्य, कीर्ति में रूचि, शास्त्र में व्यसन, ये बातें महात्माओं में स्वाभाविक ही होती है।

**सज्जनता -**

**पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति।**
**चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।।**
**नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति।**
**सन्त: स्वयं परहिताभिहिताभियोगा:।।**

अर्थ है कि सूर्य स्वयं ही कमल समूह को विकसित करता है, चन्द्रमा स्वयं ही कुमुद दल को खिलाता है, बादल भी बिना मांगे ही जल देते है – ऐसे ही सज्जन भी स्वयं ही दूसरे के हित में लगे रहते हैं।

इस प्रकार से नीतिशतक में अनेकों ऐसी नीतिगत बातें अध्ययन को मिलती है। अतएव आप सभी को इसका ज्ञान अर्जित करना चाहिये। ये सभी जीवन में उपयोगी है।

वैराग्य शतक

वैराग्य शतक उत्कृष्ट शैली में लिखा गया नीति काव्य है। इसमें इस शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है कि मनुष्यो में साधारणतः होने वाले दुर्गुणों को केसे दूर किया जाए-

*चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्*
*चलाचले च संसारे धर्म एकोति निश्चलः ॥*

इसमें शिव भक्ति पर बल देते हुए सन्यास की प्रशंसा की गई है -

*कदा संसार जालान्तर्बद्धं त्रिगुणाराज्जुभिः*
*आत्मानं मोचयिष्यामि शिवभक्तिशलाकया॥*

## 5.3.1.3 'विदुरनीति' एवं महाभारत में नैतिक शिक्षा

## विदुरनीति -

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस तस्मादेतत्रयं त्यजेत्॥**

अर्थात् "काम, क्रोध और लोभ से मनुष्य को अवश्य दूर रहना चाहिए, क्योंकि ये तीनों आत्मा को नष्ट करते हैं और नरक के तीन द्वार हैं।" (विदुर नीति, अध्याय 1.64)

**महाभारत -**

सम्पूर्ण विश्व के साहित्य में ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत अद्वितीय है, जिसमें महर्षि वेदव्यास कहते हैं:

**धर्मे चार्ते चकामे चमोक्षे च पुरुषर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यन्तेर यन्नोहास्ति न तत्काच्छित्। (महाभारत: आदि पर्व ६२/५३)**

भारतीय ज्ञान परम्परा में 'महाभारत' एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें मानव जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का नीतिगत उल्लेख प्राप्त होता है। पुरूषार्थ प्राप्ति हेतु प्रत्येक मानव को महाभारत से सीख लेनी चाहिये। कर्तव्यपरायणता, सत्यनिष्ठता, दान, धर्म, सत्य, असत्य, परोपकार, प्रतिज्ञा, जय-विजय तथा महानता के सम्मिलत रूप की ऐसी गाथा है 'महाभारत' जिसमें युग-युगान्तर तक यह मानव जीवन के लिए पाथेय है और शाश्वत रूप से रहेगी। इसलिए ऋषियों द्वारा यह कहा जाता है कि जो महाभारत में नहीं है वह अन्य कहीं भी नहीं है।

धर्म का विवेचन करते हुए महाभारत में कहा है कि –

**तर्कोऽप्रतिष्ठ: श्रुतयोर्विभिन्न नैको ऋर्षियस्यमत: प्रमाणम्।**
**धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत: स पन्था:।।**

अर्थात् धर्म को तर्क से नहीं बताया जा सकता, ना ही इसके लिए ऋषियों में मतैक्य है। प्रत्येक ऋषि अपने-अपने मति के अनुसार धर्म की परिभाषा अलग-अलग प्रकार से करते हैं। वस्तुत: धर्म तत्व अत्यन्त गुह्य है। जिस पथ पर महाजन अर्थात् पूर्व के ऋषि, महात्मा अथवा आचार्य चलकर गये, उसी को 'धर्म' कहा गया। अथवा महात्माओं द्वारा बताया गया पथ ही धर्म पथ है।

**मानव जीवन का दैनन्दिन सत्य -**

**अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवन्धनेन।**
**मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि काल: पचतीति वार्ता।।**

अर्थात् यह संसार महामोह रूपी कड़ाहा है जिसमें जीवात्मा निरन्तर वास करती है। और उस कड़ाहे में जीवात्माओं को निरन्तर सूर्यरूपी अग्नि से, दिवा और रात्रि रूपी इन्धन से तथा मास, ऋतु, पक्ष, दिन आदि काल के अवयव रूपी कलछुल से प्रतिक्षण उलट- पलट करते हुए पकाया जा रहा है। आशय है कि काल प्रतिक्षण जीवात्माओं का नाश करते रहती है।

**सबसे बड़ा आश्चर्य** –

**अहन्यह्नि भूतानि गच्छन्ति यमालयम्।**
**शेषा: जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम्।।**

अर्थ है कि प्रतिदिन दिन-रात्रि जीवात्मा जीवन-मृत्यु के चक्र से जुड़कर जन्म लेती और मृत्यु को प्राप्त होती है, तथापि जीव जीने की ईच्छा करते रहता है। इससे बड़ा आश्चर्य कुछ भी नहीं हो सकता। मानव जीवन के लिए इससे बड़ी शिक्षा क्या हो सकती है।

**विदुरनीति के प्रमुख नीतिगत तथ्य -**

- राजा को जिम्मेदारी से काम करना चाहिए, अन्यथा राज्य की संपत्ति कुछ ही समय में समाप्त हो जाएगी।
- अपने शरीर की तुलना एक रथ के समान करते हुए, हमें इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर शान्तिपूर्वक नियंत्रण रखना चाहिए, अन्यथा अनियंत्रित इन्द्रियाँ अनियंत्रित घोड़ों की तरह विनाश का कारण बनेंगी।
- जैसे सूखी लकड़ी गीली लकड़ी को जला देती है, वैसे ही निर्दोष मनुष्य को पापियों से दूर रहना चाहिए, अन्यथा उसे भी पापी के समान ही दण्ड मिलेगा।

**सफल नेता के गुण**

- प्राचीन भारतीय विचारकों ने नेताओं और नेतृत्व को बहुत महत्व दिया। एक बुरे नेता का मतलब सिर्फ़ एक बुरा व्यक्ति नहीं, बल्कि कई लोगों का बुरा भाग्य भी होता है।

**"विदुर नीति: एक राजा के मूल कर्तव्य:**

- राजा को सभी की समृद्धि की कामना करनी चाहिए और अपनी प्रजा के दुख पर कभी ध्यान नहीं देना चाहिए।
- राजा को उन लोगों की देखभाल करनी चाहिए जो विपत्ति में पड़ गए हैं और संकट में हैं।
- राजा को सभी प्राणियों के प्रति दया दिखानी चाहिए।
- एक राजा को अपने राज्य में कृषि और आर्थिक गतिविधियों के विकास में कभी बाधा नहीं डालनी चाहिए।
- राजा को सदैव वही करना चाहिए जो सभी प्राणियों के हित के लिए हो।
- एक राजा को अपने आश्रितों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।
- एक सदाचारी राजा अपनी प्रजा के छोटे से छोटे दुख के प्रति भी उदासीन नहीं रहता।
- एक सदाचारी राजा अपने समर्पित अधीनस्थों का उत्साहपूर्वक कल्याण का ध्यान रखकर उनका विश्वास जीतता है।
- जो राजा काम और क्रोध का त्याग करता है, जो उचित पात्रों को धन देता है, तथा जो विवेकशील, विद्वान और कर्मशील है, उसे सभी लोग अधिकारी मानते हैं।
- जो राजा सांसारिक लाभ से संबंधित सभी मामलों में सर्वोच्च सफलता चाहता है, उसे शुरू से ही सदाचार का अभ्यास करना चाहिए। समृद्धि अच्छे कर्मों से ही जन्म लेती है।

राजा को किन बातों से बचना चाहिए

- पापियों की मित्रता से बचना चाहिए।
- धन का दुरुपयोग, वाणी की कठोरता, तथा दण्ड की अत्यधिक कठोरता, सुदृढ़ रूप से स्थापित राजाओं को भी बर्बाद कर देगी।
- दुष्ट बुद्धि वाले राजा, इन्द्रिय-नियंत्रण के अभाव के कारण, अपने राज्य का विस्तार करने की लालसा में नष्ट हो जाते हैं।
- केवल कुटिलता पर आधारित राजा की समृद्धि नष्ट हो जाती है।
- राजा को कभी भी किसी व्यक्ति की अच्छी तरह जांच किए बिना उसे मंत्री नहीं बनाना चाहिए। जांच के समय राजा को उन लोगों को अस्वीकार कर देना चाहिए जो कृतघ्न, बेशर्म, दुष्ट स्वभाव वाले और दूसरों को उनका हक न देने वाले हों।"

राजा धृतराष्ट्र के विद्वान मंत्री विदुर ने नेतृत्व और प्रशासन के सबसे महत्वपूर्ण गुणों के बारे में बताया है। विदुर ने एक शासक के लिए एक आदर्श नेता बनने के लिए निम्नलिखित मूल्य निर्धारित किए हैं: *सादगी, पवित्रता, संतोष, सच्चाई, आत्म-संयम, धैर्य, ईमानदारी, दान, स्थिरता, विनम्रता, विश्वास, परिश्रम, सहनशीलता, वाणी में मिठास और अच्छी संगति।*

**बुद्धिमान व्यक्तियों के लक्षण/बुद्धि के चिह्न:**

- विदुर ने कहा: 'वही बुद्धिमान व्यक्ति है, जो अपनी क्षमता को जानता है, जो कभी आलसी या आलसी नहीं होता, बल्कि अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करता है, जो सुख या दुख, लाभ या हानि, मान या अपमान से प्रभावित नहीं होता, जिसका *धर्म* में दृढ़ विश्वास है और जो विषय-वस्तुओं के प्रति आकर्षित नहीं होता। (वी.एन.: 1.16)

  जिसे न तो क्रोध, न हर्ष, न अभिमान, न मिथ्या विनय, न मूर्खता, न ही घमंड, जीवन के उच्च लक्ष्यों से विचलित कर सके, वही बुद्धिमान माना जाता है। (भगवद गीता १.१८)
- जिसके इच्छित कार्य और प्रस्तावित योजनाएँ शत्रुओं से छिपी रहती हैं, तथा जिसके कार्य किए जाने के बाद ही ज्ञात होते हैं, वह बुद्धिमान माना जाता है (व.न. १.१९)।
- जिसके प्रस्तावित कर्मों में कभी भी गर्मी या सर्दी, मोह का भय, समृद्धि या विपत्ति बाधा नहीं डालती, वह बुद्धिमान माना जाता है। (वा.न.: १.२०)
- वह व्यक्ति बुद्धिमान माना जाता है, जिसकी सांसारिक बुद्धि *धर्म* (पुण्य) और *अर्थ* (धन) दोनों का पालन करती है और जो सांसारिक सुखों की उपेक्षा करके धर्म को चुनता है, जो दोनों लोकों में उपयोगी है। (वा.सं. 1.21)
- जो लोग अपनी पूरी शक्ति से प्रयास करते हैं और अपनी पूरी शक्ति से कार्य भी करते हैं तथा किसी भी बात को तुच्छ नहीं समझते, वे बुद्धिमान कहलाते हैं। (भगवद गीता 1.22)
- जो कठिन से कठिन विषय को भी शीघ्रता से समझ लेता है, दूसरों की बातें धैर्यपूर्वक सुनता है, इन्द्रिय विषयों का इच्छा से नहीं, बल्कि विवेक से अनुशीलन करता है तथा बिना पूछे अपनी राय नहीं देता, वह सबसे श्रेष्ठ ज्ञानी कहलाता है। (भगवद्गीता 1.23)
- बुद्धिमान् पुरुष जो बुद्धि रखते हैं, वे अप्राप्य वस्तुओं के लिए प्रयत्न नहीं करते, खोई हुई वस्तु के लिए शोक नहीं करते, तथा विपत्ति में भी कभी हिम्मत नहीं हारते (दृढ़ नहीं रहते) (भजन संहिता 124)।
- जो व्यक्ति अपने कार्यों को सोच-समझकर शुरू करता है, जो कभी भी चीजों को बीच में नहीं छोड़ता, जो कभी भी अपना समय बर्बाद नहीं करता, तथा जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है, वही बुद्धिमान माना जाता है। (वी.एन.: 1.25)
- वे, जो बुद्धिमान हैं, हमेशा ईमानदार कामों में प्रसन्न रहते हैं, वही करते हैं जो उनकी खुशी और समृद्धि के लिए होता है, और जो अच्छा है उसका कभी उपहास नहीं करते। (वी.एन.: 1.26)
- जो सम्मान पाकर प्रसन्न नहीं होता, अपमान से दुःखी नहीं होता, तथा *गंगा के प्रवाह में स्थित सरोवर के समान शांत और स्थिर रहता है,* वही बुद्धिमान माना जाता है। (वा.सं. 1.27)
- जो मनुष्य समस्त प्राणियों के स्वभाव को जानता है (अर्थात् यह कि सब कुछ विनाश के अधीन है), जो समस्त कर्मों के सम्बन्ध को भी जानता है, तथा जो उन साधनों के ज्ञान में निपुण है जिनका सहारा मनुष्य (अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए) ले सकता है, वही बुद्धिमान माना जाता है। (वा.सं. 1.28)

- जो वाक्पटुता से बोलता है, विभिन्न विषयों पर बातचीत कर सकता है, तर्क-वितर्क का ज्ञान रखता है, प्रतिभावान है तथा पवित्र ग्रंथों के गूढ़ अर्थ की व्याख्या कर सकता है, उसे बुद्धिमान माना जाता है। (विष्णु: 1.29)
- *वह व्यक्ति जो शास्त्रों* का अध्ययन बुद्धि द्वारा नियंत्रित करता है, और जिसकी बुद्धि शास्त्रों का अनुसरण करती है, और जो अच्छे व्यक्तियों के आदर्शों या गुणों का पालन करता है और अच्छे लोगों का सम्मान करने से कभी परहेज नहीं करता, उसे बुद्धिमान व्यक्ति कहा जाता है। (वी.एन.: 1.30)
- जो मनुष्य अपार धन-सम्पदा या विद्या प्राप्त करके भी अभिमान नहीं करता, वह महापुरुष माना गया है।

**मूर्ख व्यक्तियों के लक्षण**

दूसरी ओर, जो शास्त्रों से अनभिज्ञ होते हुए भी अभिमानी है, दरिद्र होते हुए भी हवाई किले बनाता है, तथा बिना किसी परिश्रम के वस्तुओं या धन को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, तथा अपनी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अनुचित साधनों का सहारा लेता है, वह मूर्ख है। (वा.सं. 1.32)

- जो अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरों के हित में सोचता है तथा अपने मित्रों के साथ छल करता है, वह मूर्ख कहलाता है। (भगवद गीता १.३३)

- जो मनुष्य अनायास ही इच्छित वस्तुओं की इच्छा करता है, जो वस्तुएँ उचित रूप से वांछित हो सकती हैं, उनका त्याग करता है तथा जो शक्तिशाली व्यक्तियों से द्वेष रखता है, वह मूर्ख आत्मा माना जाता है। (विष्णुदासजी: 1.34)

- जो अपने शत्रु को मित्र मानता है, अपने मित्र से द्वेष रखता है तथा दुष्ट कर्म करता है, वह मूर्ख कहा जाता है। (वा.सं. 1.35)

- जो अपनी भावी योजनाओं का प्रचार करता है, किसी पर विश्वास नहीं करता, सब बातों में संदेह करता है, तथा थोड़े समय वाले काम को करने में बहुत समय लगाता है, वह मूर्ख है। (वि.सं. 1.36)

जो श्राद्ध के साथ *पितरों* ( अर्थात पिता, माता , वृद्धजनों), नगर और देश के रक्षकों को अन्न, जल, वस्त्र *आदि* का उचित भाग नहीं देता, जो देवताओं की पूजा नहीं करता (अर्थात जो सर्वशक्तिमान ईश्वर की पूजा नहीं करता), जो विद्वानों का आदर नहीं करता, अग्नि में आहुति देकर अग्नि, वायु, जल आदि का उपकार नहीं करता तथा जो उत्तम स्वभाव वाले मित्रों को नहीं बनाता, वह मूढ़ आत्मा वाला कहा जाता है। (वा.सं. 1.37)

- जो मनुष्य बिना बुलाए सभा या दूसरे के घर में चला जाता है, बिना पूछे बहुत बातें करता है, अविश्वसनीय पर विश्वास करता है या अनुचित बात पर विश्वास करता है, वह वास्तव में मूर्ख और अधम मनुष्य है। (भगवद गीता 1.38)

जो मनुष्य स्वयं दोषी होते हुए भी दूसरों पर दोष मढ़ता है, तथा जो शक्तिहीन होते हुए भी क्रोध प्रकट करता है, वह मनुष्यों में सबसे अधिक मूर्ख है। (भगवदगीता 1.39)

जो मनुष्य अपनी शक्ति को न जानकर पुण्य और लाभ दोनों से रहित, प्राप्ति में कठिन तथा पुनः समुचित साधन न अपनाकर किसी वस्तु की इच्छा करता है, वह इस संसार में मूर्ख कहा जाता है। (वा.सं. 1.40)

हे राजन! जो कुपात्रों को उपदेश देता है, दीन-हीनों की संगति करता है, तथा कंजूसों की शरण लेता है, वह अल्पज्ञ कहलाता है। (वा.सं. १.४१)

### *5.3.1.4 अन्यान्य नीति ग्रन्थ और उसमें प्रतिपादित नैतिक शिक्षा –*

**मोहमुद्गर**

यह रचना आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित मानी गई है। इसमें सांसारिक विषय को छोड़ने और मायाजाल से मुक्त होने के उपदेश दिया गया है। इसमें नैतिक और दार्शनिक भाव हैं।

**कुट्टनीमत**

मुख्य लेख: कुट्टनी

कश्मीर के राजा जयापीड (779 - 813 ई0 ) के आश्रित एवं अमात्य कवि दामोदर गुप्त द्वारा विरचित कुट्टनीमत भी समाज को शिक्षा देने वाला नीति काव्य है। इसे वेश्याओं का शिक्षा ग्रन्थ भी कह सकते हैं। आर्याछन्द में निबद्ध यह काव्य अपनी मधुरता तथा स्निग्धता के कारण संस्कृत साहित्य में चिरस्मणीय रहेगा। प्रस्तुत श्लोक में वेश्याओं की तुलना चुम्बक से की गई है -

**परमार्थ कठोरा अपि विषयगतं लोहकं मनुष्यं च**
**चुम्बक पाषाणशिलारूपाजीवाश्च कर्षन्ति ॥**

अर्थात् जिस प्रकार चुम्बक पत्थर अपनी पहुँच में आये हुए लोहे को अपनी और खींचता है उसी प्रकार रूप से जीविका प्राप्त करने वाली वेश्याएं विषयो में आसक्त मनुष्यों को अनिवार्य रूप से खींचती हैं।

**सुभाषितरत्नसन्दोह**

जैन लेखक अमितगति ने 994 ई0 में सुभाषितरत्नसन्दोह रचना रची। इसमें 32 अध्याय हैं। इसमें जैन साधुओं , देवताओं और हिन्दुओं के व्यवहारों पर कटु आक्षेप हैं।

**धर्मपरीक्षा**

यह रचना भी अमित गति जी की है। उन्होने इस रचना में हिन्दू धर्म की अपेक्षा जैन धर्म का उत्कृष्ट बताया है।

**कला विलास**

महाकवि क्षेमेन्द्र ( 1050 ई0 ) ने अपनी तीव्र निरीक्षण शक्ति के द्वारा तत्कालीन समाज व धर्म का अनुशीलन कर नीतिपरक रचनाएं रची जिनमें से कला विलास प्रमुख स्थान रखता है। इसमें 10 अध्याय हैं। क्षेमेन्द्र ने इसमे जनता द्वारा अपनाए गए आजीविका के विभिन्न साधनों (कलाओं ) का वर्णन किया है। ये कलायें अनेक रूप धारण कर मानवों को ठगती हैं। अतएव इनकी पूरी जानकारी एवं बचने के उपाय इस काव्य में हैं। कला विकास के अतिरिक्त क्षेमेन्द्र की अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं -

दर्पदलन, चारुचर्या, चतुर्वर्गसग्रह, सेव्यसेवकोपदेश, समयमातृका, देशोपदेश, नर्ममाला

**दर्पदलन**

इसमें सात अध्याय हैं , जिसमें कवि ने उच्च कुल, धन, विद्या तथा सौन्दर्य, साहस दान तथा तपस्या से उत्पन्न तप की निःसारता दिखाई है। यथा -

**कुलं कितं श्रुतं शौर्य दानं तपस्तथा।**
**प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैत मे नहेतवः॥**

इसमें सात विचार हैं जिनके आरम्भ में तद्विषयक उपदेशात्मक सूक्तियाँ तथा उनकी उपादेयता स्पष्ट करने हेतु प्रधान पात्र द्वारा नीतियों का महत्व स्पष्टतः दर्शाया गया है।

**चारूचर्या**

यह सदाचार विषयक शतक है। इसके माध्यम से कवि ने सुन्दर व्यवहार हेतु आवश्यक नियम( नीतियों) का वर्णन किया है।

**चतुर्वर्गसग्रह**

यह पुरूषार्थ चतुष्टय का विवरण देने वाला काव्य है। इसमें चार परिच्छेद हैं जिनमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्रशंसा निविष्ट की गई है।

**सेव्यसेवकोपदेश**

क्षेमेन्द्र ने इसमें सेवक की दीन दशा एवं स्वामिजनों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहारों का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है। इयके कुल 61 श्लोक हैं। अनेकों छन्दो में निबद्ध इस काव्य की शैली प्रसादमयी है।

**समयमातृका**

इसमें आठ अध्याय हैं। इसमें वेश्याओं के प्रपंचों का वर्णन है। इसमें वेश्याओं के जाल से बचन की शिक्षा दी गई है।

**देशोपदेश**

इसमें तथा 'नर्ममाला' में कवि ने हास्योपदेश के रूप में नीति परक उपदेश दिये हैं। देशोपदेश में आठ उपदेश हैं। कवि का प्रधान लक्ष्य है कि हास से लज्जित होकर कोई भी पुरूष दोषों में प्रवृत नहीं होगा -

*हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।*
*जनस्तदुपकाराय ममायं स्वमुद्यमः ॥*

**नर्ममाला**

इसमें तीन परिच्छेद हैं।

**योगशास्त्र**

जैन कवि हेमचन्द्र ( 1088- 1172 ई0) ने इस रचना मे जैनों के कर्तव्यों तथा जैन साधुओं द्वारा अपनाये

जाने वाले कठोर नियमों का वर्णन किया गया है।

**मुग्धोपदेश**

कवि जल्हण (1130 ई0 ) ने इस रचना में वेश्याओं के छल प्रपंच से बचने की शिक्षा दी गई है।

**शान्तिशतक**

शिल्हण ( 1205 ई0) द्वारा रचित इस शतक में मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिए विशेष बल दिया है। इस रचना पर भर्तृहरि विरचित नीति शतक, वैराग्य शतक का प्रभाव स्पष्टतः झलकता है।

**शृंगारवैराग्यतरङ्गिणी**

सोमप्रभ ने 1267 ई0 में यह रचना रची। इसमें स्त्रियों के संसर्ग से हानियां व वैराग्य के लाभों को बताया गया है।

**सुभाषित नीवी**

वेदान्तदेशिक (1268- 1269 ई0) द्वारा रचित इस रचना में 145 सुभाषित श्लोकों का संग्रह है। यह रचना भर्तृहरि के नीतिशतक से पूर्णतः प्रभावित है। इसके साथ ही इस कवि ने 'वैराग्य पंचक' नामक रचना भी रची है।

**दृष्टान्तकलिकाशतम्**

कवि कुसुम देव द्वारा रचित यह काव्य अनुष्टप छन्द में रचित है। वल्लभ देव (1500 ई0 ) न इस कवि का उल्लेख किया है। अतः कुसुमदेव का काल इस समय से पूर्व का ही है। इस काल के पूर्वाध में नीति कथन है तथा उत्तरार्ध में उसकी पुष्टि दृष्टान्त द्वारा की है।

**नीति मञ्जरी**

द्याद्विवेद ने 1492 ई0 में 'नीति मंजरी' की रचना की। इसमें वृद्ध देवता आदि प्राचीन ग्रन्थों के उदाहरणों के माध्यम से दिया गया है। कतिपय स्थलों पर वेद मन्त्रों की व्याख्या भी की है।

**भामिनी विलास**

पण्डितराज जगन्नाथ ( 1590 - 1665 ई ) द्वारा रचित भामिनी विलास में क्रमशः चार भाग हैं - अन्योक्ति, शृंगार, करूण और शान्त। इनमें क्रमशः 101 , 100 , 19 और 32 श्लोक हैं। पण्डितराज पाण्डित्य के पारा प्रवीण हैं। स्थान-स्थान पद काव्य सौन्दर्य , अलंकृत पदावली, भाव सौन्दर्य, रस प्रवणता, ज्ञानगरिमा और हृदयग्राहिता का दर्शन होता है। यथा -

*सपदिविलयेतु राज्यलक्ष्मीरूपरि पतन्त्वथवा कृपाण धारा*
*अपद्दरतुतरां शिरः कृतान्तो मे तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात् ॥*

अर्थात चाहे राज्यलक्ष्मी चली जाए, चाहे तलवार की चोट सही पड़े, चाहे मृत्यु आ जाए, परन्तु मन कभी भी धर्म का परित्याग न करे।

**कलि विडम्बन**

नीलकण्ठ दीक्षित (1630 ई0 ) ने चार रचनाएं रची। जिनमें प्रथम कलि विडम्बन है। इसमें कलियुग की विडम्बना का उत्कृष्ट चित्रण है। यह एक व्यंग्यप्रधान काव्य है। यथा -

*यत्र भार्यागिरो वेदाः यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्।*
*यत्र स्वप्रतिभा मौनं तस्मै श्रीकलये नमः।।*

**सभारञ्जनशतक**

नीलकण्ठ दीक्षित जी की अन्य कृति इस शतक में यह बताया गया है कि किस प्रकार विद्वन्मण्डली को तथा राज्य सभा के व्यक्तियों को प्रसन्न करना चाहिए।

**शान्ति विलास**

दीक्षित जी की तृतीय कृति शान्ति विलास में 51 श्लोक हैं जो मन्दाक्रान्ता छन्द में विरचित हैं। इस काव्य में भौतिक जीवन की अनित्यता का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। साथ ही मोक्ष प्राप्ति हेतु शिव से प्रार्थना भी की गई है।

**वैराग्य शतकम्**

दीक्षित जी की चतुर्थ कृति वैराग्य शतक में वैराग्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने के अनेकानेक लाभ बताये गए हैं।

**उपदेश शतक**

अल्मोड़ा निवासी पर्वतीय कवि जिनका समय 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है, ने उपदेश शतक नामक

काव्य आर्या छन्द में रचा है। इसके जनोपयोगी उपदेश स्वरूप 100 श्लोक हैं।

**सुभाषित कौस्तुभ**

वे कटाध्वरी ( 1650 ई0 ) रचित प्रस्तुत काव्य भी उपदेशात्मक शैली में रचित नीति काव्य है।

**लोकोक्ति मुक्तावली**

दक्षिणा मूर्ति नामक कवि द्वारा रचित यह काव्य नाना छन्दो में निबद्ध है। इसमें 94 श्लोक हैं जिनमें विद्वत्प्रशंसा, दुर्जन, त्याग , द्वैत निन्दा , शिक्षा पद्वति , विषाद पद्धति तथा ज्ञान पद्धति में वर्ण्य-विषय का विभाजन है।

**हिन्दी का नीति साहित्य**

हिन्दी साहित्य में भी अनेक नीति काव्य लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए आप सभी तुलसीदास, रहीम आदि के नीति के प्रसिद्ध दोहे देख सकते हैं-

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखिए चारी॥ (तुलसीदास)

कह रहीम कैसे निभै बेर केर को संग।

वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग॥ (रहीम)

चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥ (कबीरदास)

## बोध प्रश्न

1. नीति ग्रन्थों का मूल उद्भव कहां से हुआ है?

   क. पुराण ख. स्मृति ग. वेद घ. उपनिषद

2. जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य है –

   क. जीने की ईच्छा रखना ख. अर्थ ग. काम घ. मोक्ष

3. 'महाजनो येन गत: स पन्था:' कहाँ की उक्ति है।

   क. रामायण ख. गीता ग. महाभारत घ. विदुरनीति

4. सबसे बड़ा नीति संग्रह गन्थ कौन सा है।

   क. विदुरनीति ख. शुकनीति ग. चाणक्यनीति घ. नीतिशतकम्

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

5. नीतिशतकम् में श्लोकों की संख्या ..... है।

6. भर्तृहरि ..... ग्रन्थ के लेखक है।

7. शेषा: जीवितुमिच्छन्ति ..... परम्।

8. धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां .....।

9. ..... पुरूष निरन्तर अधोगति को प्राप्त होता है।

10. धीरज धरम मित्र अरू नारि ..... द्वारा रचित दोहा है।

## 5.4 सारांश

नीति काव्य का उद्भव विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से माना गया है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत में धर्म और नीति का सदुपदेश सम्मिलित है। इन नीति ग्रन्थों में तत्व ज्ञान और वैराग्य का सुन्दर सन्निवेश है। इनमें प्रायः सभी धार्मिक विश्वासों का उल्लेख और उपदेश है। इन नीति ग्रन्थों में लोक जीवन के व्यवहार में आने वाली बातों पर विचार करने के साथ ही साथ जीवन की असारता का निरूपण कर मानव मात्र को 'मोक्ष' के साधन का उपदेश भी है। भारतीय नीति के अन्तर्गत धर्म एवं दर्शन भी समाहित हो जाते हैं इसीलिए नीति काव्य का उद्भव स्मृति ग्रन्थों से भी माना जाता है। महाभारत के दो बड़े प्रसंगों की श्रीमद्भगवद्गीता एवं 'विदुरनीति' तो स्वयं ही नीति काव्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भगवद्गीता तो भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है जिसके माध्यम से हमें जीवन की असारता, आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मवाद आदि की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार विदुर नीति में भी कुल धर्म, स्वधर्म, राजधर्म, विश्व धर्म व आत्म धर्म के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि द्वारा विरचित 'नीतिशतकम्', आचार्य चाणक्य द्वारा रचित 'चाणक्य नीति' और विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र (हितोपदेश) भी नीति शास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ है। आप सभी शिक्षार्थियों को यह भी ज्ञात होना चाहिये कि हिन्दी साहित्य में भी नीति के कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।

## 5.5 पारिभाषिक शब्दावली

उद्भव - जन्म, प्राकट्य

अनमोल – मोल रहित

हितोपदेश - एक कल्याणकारी उपदेशक ग्रन्थ

चाणक्यनीति – चाणक्य के द्वारा लिखित नीति ग्रन्थ

शतकत्रय – नीति शतक, श्रृंगार शतक, वैराग्य शतक

दृष्टिगोचर – दिखलाई पड़ना

अपूर्व – जो पहले नहीं हुआ हो

सर्वश्रेष्ठ – सबसे उत्तम

## 5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. ग
4. ग
5. 100
6. शतकत्रय
7. किमाश्चर्यमत:
8. महाजनो येन गत: स: पन्था:
9. विवेकभ्रष्ट
10. तुलसीदास

## 5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चाणक्य नीति

विदुरनीति

महाभारत

श्रीमद्भगवद्गीता

नीतिशतकम्

## 5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चाणक्यानीति में प्रतिपादित नीतियों का विस्तृत वर्णन करें।
2. नीतिशतकम् का विस्तृत वर्णन करें।
3. विदुरनीति के अनुसार नैतिक शिक्षा का विश्लेषण कीजिये।
4. महाभारत के अनुसार नैतिक शिक्षा का उल्लेख कीजिये।
5. हिन्दी साहित्य के अनुसार नैतिक शिक्षा का वर्णन करें।

# खण्ड - 2

# भारतीय प्रमुख ग्रन्थों में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा

# इकाई – 1 बाल्मीकी रामायण के अनुसार नैतिक शिक्षा

**इकाई की संरचना**

१.१ प्रस्तावना

१.२ उद्देश्य

१.३ नैतिकता के आधार-पुरुष श्रीराम

१.३.१ दृढप्रतिज्ञ

१.३.२ मातृ-पितृभक्ति व सभी माताओं से समान प्रीति

१.३.३ भ्रातृ-प्रेम

१.३.४ शरणागतों की रक्षा

१.३.५ उपकार की स्मृति एवं अपकार की विस्मृति

१.३.६ श्रीराम का गाम्भीर्य एवं अक्षोभता

१.३.७ सत्ता-वैभव से उत्कृष्टतर तपोवन-वैभव

१.४ भरत का आदर्श

१.५ नीति

१.६ सज्जन-पुरुष

१.७ स्वजन की प्राथमिकता

१.८ स्वभाव

१.९ अपकीर्ति

१.१० इन्द्रिय – निग्रह

१.११ क्षमा

१.१२ दान

१.१३ पुरुषार्थ

१.१४ समक्ष रहने पर प्रीति

१.१५ राजनीति

१.१६ सारांश

१.१७ शब्दावली

१.१८ बोध प्रश्नों के उत्तर

१.१९ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१.२० सहायक ग्रन्थ सूची

१.२१ निबन्धात्मक प्रश्न

## १.१ प्रस्तावना

प्रिय अध्येता! प्रथम पाठ्यक्रम के द्वितीय खंड की प्रथम इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई में आप रामायण में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा के कुछ सन्दर्भों का अध्ययन करेंगे। वस्तुत: सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय नैतिक शिक्षा से भरा पड़ा है जिसके अनुशीलन ने भारत को 'विश्वगुरु' के रूप में प्रतिष्ठित किया था, जिसका उद्घोष मनु महाराज सगर्व करते हुए नहीं थकते हैं –

**एतत्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।**
**स्वम् स्वम् चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ।।**

अर्थात् इस देश में उत्पन्न, अग्रजन्मा = जो विद्या या शास्त्र के चिंतन में ही रत रहें ऐसे लोगों के सान्निध्य में रहकर उनसे चरित्र की शिक्षा प्राप्त करके ही सम्पूर्ण विश्व के मानव सच्चे अर्थों में शिक्षित हो सके।

भारतीय संस्कृति का तत्व-प्रस्थान हो या साहित्य-प्रस्थान, वह अपनी परम भव्यता और दिव्यता के आयाम में देदीप्यमान है। इसलिए सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर मानवीय अस्तित्व के परम बोध तक की यदि ज्ञानयात्रा करनी हो तो हमें भारत के सांस्कृतिक इतिहास को पढ़ना और समझना होगा। इस भारतीय-सांस्कृतिक-इतिहास का आदर्श प्रतिमान रामायण मानव के जातीय जीवन की समग्रता का गगनचुंबी हिमालय है। इसके प्रमुख पात्रों के समस्त चरित्र शास्त्रीय मर्यादा में आबद्ध आदर्श अत्यन्त समादरणीय एवं अनुकरणीय है। शास्त्र कहते हैं – '**क्रतुमयोऽयं पुरुष:**' अर्थात् पुरुष क्रतुमय = संकल्पवान् है। '**स यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते**'। अर्थात् वह जैसा संकल्प करता है, फिर वैसा बन जाता है। वस्तुत: मनुष्य जिन बातों का बार-बार विचार करता है, धीरे-धीरे वैसी ही इच्छा हो जाती है। फिर उसी इच्छा के अनुसार उसके सारी बातें, आचरण, कर्म और कर्मानुसारिणी गति होती है। अत: अच्छे आचरण और चरित्र के लिए अच्छे विचारों को लाना चाहिए। विशेषकर बाल्यावस्था में निर्मल एवं पवित्र अन्त:करण – जो कि पिघलाए गए लाक्षा (लाख) के समान कोमल होता है - में उत्तम आचरण एवं उपदेशों के द्वारा पहले से ही जो बातें अंकित हो जाती हैं, वे ही उसका चरित्र-निर्माण करती हैं'।

चरित्र कैसा होना चाहिए इस विषय में वैसे तो अनेकों इतिहास-पुरुष हुए हैं जिनके आचरण से चरित्र की शिक्षा ली जा सकती है किन्तु इन सबमें कुछ न कुछ त्याज्य अवश्य ही है और फिर जी तरह छोटी-छोटी नदियां सागर में जाकर मिल जाती हैं ठीक उसी प्रकार अनेकों जीवन-चरित एक मात्र मर्यादा पुरुषोत्तम में समाहित हो जाते हैं इसीलिए कहा गया है -

**चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।**

**एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ।।**

अर्थात् श्रीराम के चरित्र का वर्णन यदि किया जाए, उसको लिखा जाए तो उसका विस्तार ही सौ करोड़ योजन के तुल्य होगा और उसका एक-एक अक्षर मनुष्य के महापातकों का नाश करने में सक्षम होगा। राम नाम जितना जन-जन में प्रख्यात है, उतना और कोई भी विष्णु, कृष्ण आदि देवताओं के नाम प्रख्यात न हो सका। तो आइए इस इकाई के माध्यम से रामायण के प्रमुख पात्रों विशेषकर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जीवनी और जीवनीय-शक्ति-रूपी गुणों के आलोक में रामायण-प्रोक्त नैतिक शिक्षा का संक्षेप में परिचय प्राप्त करें।

## १.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के गुणों के आधार पर नैतिकता का स्वरूप निरूपित कर सकेंगे।

- ❖ नैतिक-शिक्षा के आलोक में मानवीय-गुणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ नैतिक-शिक्षा के आधारभूत गुणों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ❖ रामायण में निरूपित नैतिक-शिक्षा का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ नैतिक-शिक्षा के अध्ययन में रामायण के अवदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## १.३ नैतिकता के आधार-पुरुष श्रीराम

वाल्मीकि के राम की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, जिन क्रूरताओं को सभी देवता मिलकर भी समाप्त न कर सके उसे वाल्मीकि के मानव राम ने, जो स्वयं को सम्पूर्ण रूप से मनुष्य ही मानते हैं – 'आत्मानं मानुषं मन्ये', अपने धनुष के दीर्घ मण्डल के भीतर घेर दिया। रावण की शक्ति सारे देवताओं से भी अधिक प्रचण्ड थी, मानव राम ने रावण की क्रूरता को समाप्त कर देवत्व के ऊपर मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर दिया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने वेद-प्रतिपादित समस्त धार्मिक नियमों एवं सदाचारों का अनुष्ठान किया। मानव-जाति के सर्वांगीण विकास एवं नि:श्रेयस के लिए कहीं सामान्य रूप से तो कहीं पर विशेष रूप से धर्म को या कहें कि चरित्र को अपने जीवन में उतारा। यदि श्रीराम के चरित्र के किसी एक गुण को ही अपने जीवन में उतार लिया जाए, तत्सम्बन्धी कथा का श्रवण-मनन व आचरण किया जाए तो उससे प्राप्त नैतिक सीख मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सहायिका सिद्ध होगी। देवर्षि नारद धीरोदात्त नायक श्रीराम में सोलह गुणों का समन्वयन करते हैं। इन गुणों में

सच्चरित्रता एक विशेष गुण है। जब कैकेयी ने श्रीराम से कहा कि जब तक तुम वन में नहीं चले जाओगे तब तक तुम्हारे पिता न तो स्नान करेंगे और न ही भोजन। विमाता कैकेयी के इस अप्रिय एवं कठोर वचन को सुनकर भी श्रीराम के मन में कोई क्लेश नहीं हुआ, बल्कि वो कहते हैं –

**नाहमर्थपरो देवि! लोकभावस्थमुत्सहे।**
**विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्॥**

अर्थात् हे देवी! मैं, अर्थपरो = धन या राज्य का लोभी, कहलाकर संसार में नहीं रहना चाहता। आप मुझे ऋषियों की ही भांति शुद्ध धर्म में पूर्ण रूप से आस्थावान् समझें।

इसी बात को प्रमाणित करते हुए माता सुमित्रा कहती हैं –

**न हि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः।**

अर्थात् राम से बढ़कर इस विश्व में सत्पथ = सज्जनता के मार्ग पर चलने वाला कोई व्यक्ति नहीं है।

यद्यपि रामायण में अनेकों स्थलों पर सदाचार का निरूपण हुआ है, तथापि श्रीराम का आचार सभी सदाचारों की शिरोमणि, सन्मार्गों में प्रधान, लौकिक व्यवहारों की कसौटी तथा धर्म और मर्यादा का निष्कृष्ट पुटपाक है। उनके आचरण के विषय में अयोध्याकाण्ड में कहा गया है –

**स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।**
**उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥**
**बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।**
**वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥**

अर्थात् श्रीराम शान्तचित्त रहने वाले थे वे किसी से बात करते समय आरम्भ में ही अत्यन्त मृदुता से बात करते थे। यदि कोई उनसे रूखेपन या कड़ाई से बात भी करे तो भी वे उसका प्रत्युत्तर नहीं देते थे। वे बुद्धिमान्, मधुरभाषी और बलवान् होने पर भी अपने बल या गुणों को लेकर अभिमानी नहीं थे।

रावण द्वारा मायामृग बनने के लिए अनुरोध करने पर मारीच कहता है –

**रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।**

प्रभु श्रीराम स्वयं ही मूर्तिमान् धर्म हैं, वे सज्जनशिरोमणि हैं, उनका पराक्रम परम सत्य है।

राम ने अपने आचरण द्वारा प्रजा तथा समाज को आदर्श रूप में ढाला था। राम ब्राहमणों के रक्षार्थ तथा देश के हितार्थ अपने अप्रमेय गुरु के अनुसार सदा ही महत् कर्म की साधना में उद्यत रहे –

**गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय वै।**

**तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यत: ।।**

अर्थात् गौ-माता एवं ब्राह्मण के हित के लिए और देश के हित के लिए हे गुरुवर! आपके अप्रमेय वचनों के पालन हेतु मैं सदैव उद्यत हूं।

श्रीराम के चरित्र को बड़ी ही सुन्दरता से व्यक्त किया गया है -

**त्यक्त्वा जीर्णदुकूलवद् वसुमतीं बद्धोऽम्बुधिर्बिन्दुवद्**
**बाणाग्रेण जरत्कपोतक इव व्यापादितो रावण: ।**
**लङ्का कापि विभीषणाय सहसा मुद्रेव हस्तेऽर्पिता**
**श्रुत्वैवं रघुनायकस्य चरितं को वा नरो नाञ्चति ।।**

अर्थात् जैसे कोई फटे-पुराने कपड़े का त्याग कर देता है ठीक उसी प्रकार राज्य-भोग हेतु अपने समक्ष प्रस्तुत वसुमती = धरा (अयोध्या राज्य) का त्याग बिना कुछ मन में मलिनता या चिता का भाव लाते हुए श्रीराम ने त्याग दिया जो उनके अद्भुत पितृ-भक्ति, तितीक्षा, समत्व-भाव, औदार्य आदि गुणों का परिचय देता है। अम्बुधि = समुद्र को एक बिन्दु के समान सरलता से ही बांधकर (यह उनके धैर्य, गाम्भीर्य जैसे गुणों का प्रकाशक है), बाण के अग्र भाग से, जरत्कपोतक इव = एक बूढ़े कबूतर की भांति वीर्यहीन करते हुए रावण (को), व्यापादित: = मार दिया, जो उनके पराक्रम और शौर्य का परिचायक है। इन सबको अति सहजतापूर्वक करके 'किसी' लंका को जीतकर विभीषण को दे दिया। यहां 'किसी' शब्द से यह आशय है कि यद्यपि लंका सुवर्णमयी सभी वैभवों से परिपूर्ण थी किन्तु उसे दूसरे = विभीषण के द्वारा भोग्य वस्तु मानकर बिना मोह-लोभ आदि के उसे विभीषण को सौंप दिया जो प्रभु श्रीराम के सज्जनता, औदार्य, शरणागतवत्सलता, प्रतिज्ञापालक आदि अनेकों गुणों का बोधक है। ऐसे नाना-गुण-गण-मण्डित मर्याद पुरुषोत्तम के चरित्र को सुनकर कौन मनुष्य आनन्दातिरेक में भावविभोर होकर नर्तन नहीं करने लगेगा।

## बोध प्रश्न

१. किसका चरित्र शतकोटि-योजन के तुल्य है? श्रीराम का
२. 'नाहमर्थपरो देवि' यहां 'देवि' पद से कौन अभिप्रेत है? कैकेयी
३. राम ने रावण को किसके समान मारा? बूढ़े कबूतर के समान
४. श्रीराम ने लंका को किसके समान त्याग दिया? पुराने कपड़ों के समान

श्रीराम के कुछ गुणों के आलोक में रामायण की नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा को संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत करने के उद्देश्य से क्रमश: कुछ गुणों का सप्रमाण संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

## १.३.१ दृढप्रतिज्ञ

मनुष्य को अपने दिए गये वचनों का पालन यथासंभव करना चाहिए। उसे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहना चाहिए जैसे अपने कुल की इस मर्यादा का पालन करते हुए प्रभु श्रीराम रहे। दण्डक वन में स्थित ऋषियों की तपस्या एवं हवन आदि में राक्षस विघ्न डालते रहते थे, जिससे सभी साधु-सन्त अत्यंत दु:खी एवं संतप्त रहते थे। ऐसे में वे सभी ऋषि श्रीराम से उनकी रक्षा हेतु निवेदन किया। तब अपने संनिधि में समागत दण्डकारण्य के निवासी ऋषियों के सर्वथा रक्षण के लिए युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की। परन्तु माता सीता जी को विना वैर के पर-प्राणों की हिंसा के प्रति अरुचि हुई तो उन्होंने श्रीराम से इस सम्बन्ध में निवेदन किया। तब श्रीराम ने उनसे कहा –

**अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।**

**न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य .....॥**

अर्थात् हे सीते! मैं जीवितं जह्यां = अपने जीवन को त्यागूं (त्याग कर सकता हूं) एवं लक्ष्मण सहित तुम्हारा भी त्याग कर सकता हूं किन्तु एक बार जब मैंने प्रतिज्ञा कर ली तो फिर मैं उस प्रतिज्ञा का त्याग नहीं कर सकता हूं।

**प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत्।**

( उत्तरकाण्डः106/9)

प्रतिज्ञा के विनष्ट होने पर धर्म का नाश होता है। इसी बात को अन्य प्रसंग में दूसरे तरीके से कहा गया है -

**हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थः प्रयान्ति नरकं नराः।**

( उत्तरकाण्डः 106/3)

जो मनुष्य प्रतिज्ञा भंग करते हैं , वे नरक में गिरते हैं ।

### १.३.२ मातृ-पितृभक्ति व सभी माताओं से समान प्रीति

मर्यादा पुरुषोत्तम की अपने माता-पिता पर जो भक्ति श्रद्धा है नीतिवान् पुरुष को वैसी ही श्रद्धा अपने माता-पिता पर भी होनी चाहिए। कोई भी नीति इससे बढ़कर नहीं हो सकती है। पितृ-भक्ति से सम्पृक्त श्रीराम के इन वचनों को तनिक सुनिए -

**लक्ष्मी चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।**

**अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ।।**

श्रीराम कहते हैं चन्द्रमा से, लक्ष्मी = उसकी शोभा भले ही, अपेयात् = पृथक् हो जाए, हिमवान् भले ही हिमविहीन हो जाए एवं सागर, वेलाम् अतीयात् = भले ही अपनी मर्यादा त्याग दे परन्तु मैं पिता की आज्ञा नहीं टाल सकता।

प्रभु श्रीराम की मातृ-पितृभक्ति अतुलनीय एवं अनुकरणीय है। किन्तु इसका यह अर्थ कथमपि नहीं है कि उनकी अन्य माताओं से प्रीति नहीं थी, बल्कि वे सभी पर सामान भाव से श्रद्धा व आदर रखते थे। माता कौशल्या के तो राम जीवन ही थे। यही कारण है की राम के वियोग में उनमें जीने का भी उत्साह नहीं रह जाता है –

**नहि तावद्गुणैर्जुष्टं सर्वशास्त्रविशारदम् ।**

**एकपुत्रा विना पुत्रमहं जीवितुमुत्सहे ।।**

अर्थात् गुणैर्जुष्टं = सभी प्रकार के गुणों से पोषित या युक्त सभी शास्त्रों के पण्डित उस एक-मात्र पुत्र वाली मुझमें उसके बिना जीवन जीने का भी उत्साह नहीं है।

कौशल्या के प्रति राम के मन में जैसा सम्मान था उससे अधिक सम्मान का अनुभव स्वयं विमाता कैकेयी करती हैं –

**कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु ।**

अर्थात् अपनी माँ कौशल्या से भी बढ़कर राम मेरी, शुश्रूषते = सेवा की इच्छा रखते हैं (सेवा करते हैं)।

पिता के वन-गमन-विषयक आज्ञा-पालन में अति उत्साह से बोलते हैं –

**अहं हि वचनात् राज्ञः पतेयमपि पावके ।**

**भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।।**

देवि! मैं, राज्ञः वचनात् = राजा दशरथ (पिता) की आज्ञा से अग्नि और अर्णवे = समुद्र में भी, पतेयम् = कूद सकता हूं और तीखे विष को भी पी सकता हूं।

माता सुमित्रा भी कहती हैं कि राम झूठा कलंक लगाने पर भी क्रोध नहीं करते हैं, क्रुद्ध लोगों को भी प्रसन्न करने वाले तथा समदुःखः = दूसरों के दुःख में समान दुःख प्रकट करने वाले राम अब कहां चले जा रहे हैं –

**न क्रुद्धत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् ।**

**क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति ।।**

### १.३.३ भ्रातृ-प्रेम

भाई के साथ कैसा व्यवहार किया जाय इस विषय में राम का चरित्र मानवमात्र के लिए सदा ही आदर्श रहेगा। उन्होंने सदा ही अपने भाइयों के प्रति अनुपम स्नेह, उनकी सुख-सुविधा अभिलाषा का ध्यान रखा । चित्रकूट में भारत के आगमन के अवसर पर उनके उद्गार अगाध भ्रातृ-प्रेम का परिचायक है। अयोध्याकाण्ड में वे कहते हैं – लक्ष्मण! मैं सत्य और आयुध की शपथ लेकर कहता हूं कि धर्म, अर्थ, काम और यह पृथिवी मैं तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूं। भरत! तुम्हें और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसमें आग लग जाय!

### १.३.४ शरणागतों की रक्षा

शरण में आए हुए भयभीत की रक्षा करना प्रत्येक शक्तिसम्पन्न वीर व्यक्ति का कर्तव्य है। रावण के द्वारा अपमानित होकर विभीषण निराश्रित अवस्था में जब श्रीराम की शरण में आए उस समय वानर सेनापतियों के मन में अनेक प्रकार के सन्देह उत्पन्न हुए। किन्तु राम ने सभी मंत्रियों और सेनापतियों के सामने शरणागत-रक्षण-रूपी धर्म को सर्वथा उचित और परिपालनीय बताते हुए कहा कि यदि शत्रु भी शरणागत है तो वह भी रक्षणीय है –

**आर्तो वा यदि वा दीन: परेषां शरणं गत: ।**
**अरि: प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्य: कृतात्मना ।।**

अर्थात् यदि शत्रु भी दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे तो उसे मारना नहीं चाहिए। दु:खी अथवा अभिमानी कोई भी शत्रु अपने विपक्षी का शरणागत हो जाए तो धर्मज्ञ पुरुष को अपने प्राण के समान उसकी रक्षा करनी चाहिए।

युद्धकाण्ड में भी श्रीराम सुग्रीव से कहते हैं –

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।।**

अर्थात् मेरा यह व्रत या प्रण है कि जो एक बार भी मेरी शरण में आकर यह कह दे कि 'मैं आपका हूं', उसको मैं सब प्राणियों से निर्भय कर देता हूं।

## १.३.५ उपकार की स्मृति एवं अपकार की विस्मृति

**अर्थिन: कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत्।**
**तस्य स्यात् सफलं जन्म किं पुन: पूर्वकारिण:।।**

(किष्किन्धाकाण्ड: 43/7)

जो व्यक्ति अर्थिनः = (हित की) अभिलाषा रखने वाले प्रार्थी (का), जो कि अकर्तुः = अनुपकारी (पूर्व में रहा हो ऐसे) जन की भी, कार्यनिर्वृत्तिं चरेत् = कार्य को समाप्त करे अर्थात् सहायता करता है, उसका जन्म सार्थक कहलाता है। पूर्व में उपकार कर चुके व्यक्ति की अपेक्षाओं की पूर्ति तो मनुष्य को करनी ही चाहिए।

**नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।**

( उत्तरकाण्डः 40/24)

मनुष्य में प्रत्युपकार प्राप्त करने की योग्यता विपत्ति में ही आती है। अर्थात् पूर्व में किए गये उपकार के बदले में स्वयं के लिए प्रत्युपकार की स्थिति = जिस पर उपकार किया उसके द्वारा उपकार को चुकाने की स्थिति विपत्ति में ही बनती है। और मित्र होने के नाते मैं यह कभी भी नहीं चाहता हूँ कि तुम संकटग्रस्त होओ और मैं तुम्हारे उपकार का ऋण चुकाऊँ।

मित्र! उपकार का स्मरण अवश्य करना चाहिए क्योंकि उसको विस्मृत करने से व्यक्ति कृतघ्न कहलाता है और जिसने हित किया है उसका प्रति-उपकार करने हेतु व्यक्ति प्रस्तुत नहीं होता है जिससे प्रत्युपकार करके ऋणमुक्त हो सके। किन्तु अपकार का स्मरण नहीं करना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति में नकारात्मकता को जन्म देता है। यह व्यक्तित्व को उठाता नहीं अपितु गिराता है। इसलिए राम अन्य पराकृत सैकड़ों अपकारों का स्मरण नहीं करते थे, अपितु उसका विस्मरण करना ही श्रेयस्कर समझते थे –

**कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।**
**न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।।**

राम के समान कोई भी नीतिमान् नहीं हुआ। उनकी नीतिमत्ता से ही वानरों तथा भालुओं ने भी उनकी सुभृत्यता स्वीकार की थी। श्रीराम जैसे न्यायनिष्ठ के प्रभाव से ही वानर और भालु भी राम के साथी हो गये।

### १.३.६ श्रीराम का गाम्भीर्य एवं अक्षोभता

राम किसी भी परिस्थिति में न तो क्षुब्ध होते थे न ही चंचल। राम ने सदा समुद्र को अपने सामने रखकर ही अपने सामर्थ्य को तौला है –

**न हि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितां पतिः।**

प्रतिक्षण नदियों के अपरिमित प्रहारों से पीड़ित और उत्तोलित होता हुआ समुद्र अपनी समग्र दुर्धर्ष शक्तियों के भीतर कभी भी क्षुब्ध नहीं होता, वह सर्वथा समाहित है। राम ने भी भयंकरता से टकराते समय अपने व्यक्तित्व की गुरुता या गम्भीरता को समुद्र की गंभीरता से तौला है। वे प्रत्येक

क्षण समुद्र की तरह अक्षोभ्य हैं- परशुराम के शस्त्र की धार भी उन्हें क्षुब्ध न कर सकी, न पिता की कठोर आज्ञा। चौदह हज़ार राक्षसों से घिरे हुए राम जब खर की सेना को देख रहे थे – उस समय उनके नेत्रों में प्रलय के अग्नि-समुद्र को उछलता हुआ देखकर; खर की वह विशालवाहिनी दूर से ही व्यूहरचना में विभक्त होती हुई चारों ओर फैलती जा रही थी – राम उनके हृदय के भीतर बढ़ती हुई कायरता को व्यूह के उपलक्ष से पढ़ रहे थे। वह देख रहे थे – एक व्यक्ति से युद्ध करने के लिए खर कितनी दूरी से व्यूह-रचना में आबद्ध होकर बढ़ता चला आ रहा है –

**तच्चानीकं महावेगं रामं समनुवर्तत ।।**
**धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् ।**
**रामोऽपि चारयं चक्षु: सर्वतो रणपण्डितः ।।**

**(वाल्मीकिरामा. अरण्यकाण्ड, २४/३१-३२)**

राम किसी भी क्षण असावधान नहीं थे; रण-शास्त्र के महान् पण्डित श्रीराम चारों ओर आँखों को घुमाकर देख रहे थे कि एक व्यक्ति से लड़ने के लिए किस प्रकार सेना व्यूहाकार होती जा रही थी। खर की सेना के पैरों का कम्पन राम के नेत्रों से अलक्षित नहीं था।

**१.३.७ सत्ता-वैभव से उत्कृष्टतर तपोवन-वैभव**

यदि जीवन के उन्नति या कहें कि व्यक्तित्व के निखार का प्रश्न हो तो ऐसे में राज्य की अपेक्षा वनवास का महत्त्व अत्यधिक है। और इस महत्त्व को सदैव ही एक आदर्श जीवन की कामना रखने वाले व्यक्ति को मर्यादा पुरुषोत्तम की भांति समझना और जीवन में उसी प्रकार उतारना चाहिए जिस प्रकार श्रीराम ने उतारा। कहा है –

**राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदय: ।**

**(अयोध्याकाण्ड, २२/२९)**

अभिषेक के जल-कलश को देखकर राम का हृदय चंचल नहीं हुआ था; राम उस समय चंचल हो उठे थे – जब वे आर्द्रपटवासी और पंचाग्नि तपने वाले तपस्वी राम के समक्ष आकर क्रन्दन कर रहे थे। रुद्र के धनुष को नीचे झुकाते हुए राम की भुजाएं अहंकार से सर्वथा शून्य थीं किन्तु खर की सेना के विस्तार का निरीक्षण करते समय राम की भुजा धनुष पर दृढ़ होती जा रही थी। राम ने क्षण भर में वनवासियों और उस स्थान को अत्याचारों से मुक्त कर दिया। वसिष्ठ ने ठीक ही कहा –

**न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति: ।**
**तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ।।**

**अयोध्याकाण्ड ३७/२९**

अर्थात् जहां राम राजा नहीं है वह राष्ट्र हो ही नहीं सकता है। राम जहां हैं वहीं राष्ट्र का स्वरूप स्थिर है, चाहे अयोध्या हो या जंगल।

यद्यपि भगवान् श्रीराम एवं भरथ जी के कुछ चारित्रिक-गुणों का संक्षेप में नीतिगत-प्रसंगों के वर्णन के क्रम में उल्लेख पूर्व में किया गया है तथापि कुछ गुणों को आधार बनाकर रामायण में वर्णित नीति-प्रसंगों का उल्लेख आगे किया जा रहा है।

**बोध प्रश्न**

५. हीनप्रतिज्ञ की क्या गति होती है? नरक की
६. श्रीराम के लिए 'समदु:ख' सम्बोधन कौन करता है? सुमित्रा
७. प्रत्युपकार की स्थिति कब बनती है? विपत्ति में
८. श्रीराम ने राज्य और वनवास में किसको श्रेष्ठ माना? वनवास को

## १.४ भरत का आदर्श

भरत आदर्श भ्रातृप्रेम और परम्परागत धार्मिक कुल-मर्यादा की सुरक्षा हेतु राजकीय वैभव के साथ वन में जाकर वहीं श्रीराम को राजपद पर अभिषिक्त कर लौटा लाने के लिए गुरुजनों, मंत्रियों एवं प्रमुख नागरिकों सहित चित्रकूट के प्रस्थान करते हैं। बीच में श्रीराम का अभिन्न मित्र निषादराज मन में यह सोचकर कि श्रीराम से युद्ध करके उन्हें समाप्त कर निष्कंटक राज्य की इच्छा से तो कहीं भरत वन नहीं जा रहे हैं, मार्ग रोकता है। किन्तु उनके सम्पर्क में आने पर जब उसे पता लगता है कि ये तो श्रीराम को राजा बनाने-हेतु उनकी अनुनय-विनय कर उन्हें लौटाने के लिए जा रहे हैं, तब भरत जी की श्रीराम के प्रति अनुकरणीय भ्रातृप्रेम से प्रभावित होकर वह कहते हैं –

**धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।**
**अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ।।**

अर्थात् भरज जी! आप धन्य हैं, आप जैसा छोटा भाई मुझे भूमंडल के सम्पूर्ण इतिहास में कहीं भी नहीं दिखता। जिस चक्रवर्ती साम्राज्य के लिए बड़े-बड़े लोग जीवन भर संघर्ष करते हैं, ऐसे अनायास-प्राप्त महनीय साम्राज्य का आप त्याग कर रहे हैं।

## १.५ नीति

यद्यपि प्राय: सभी गुण नीति-विषयक-प्रसंग के अन्तर्गत प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होते ही रहते हैं और इन गुणों को आधार बनाकर आगे की बात की ही जाएगी तथापि इसके पूर्व कुछ नीतिगत बातों को संक्षेप में रख देना उचित होगा जो रामायण में वर्णित हैं।

रामायण का उत्तरकाण्ड कहता है -

**एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशनम् ।** ( उत्तरकाण्डः 105/9)

यदि सभी के या समूह के नाश का प्रसंग उपस्थित हो तो ऐसे में एक की ही मृत्यु हो, यह अच्छा है किन्तु सबका विनाश नहीं होना चाहिए।

**न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ।**( अरण्यकाण्डः 90/20)

जो आपका अनिष्ट करने को उद्यत हो अर्थात् अपना प्रिय न हो, उसे कोई हितकारी उपदेश नहीं देता है ।

**नहि सामोपन्नानां प्रहर्ता विद्यते भुवि ।** (किष्किन्धाकाण्डः 59/16)

इस पृथ्वी पर नीच पुरुषों में भी कोई ऐसा नहीं है , जो नम्रतापूर्वक मृदुवचन बोलने वालों पर आघात करे।

**१.६ सज्जन-पुरुष**

मित्र! यद्यपि श्रीराम का चरित्र जानने के पश्चात् अन्य कोई संदेह नीति या व्यवहार को लेकर नहीं रह जाता है तथापि कुछ बिन्दुश: दृष्टांत प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिससे मर्यादा पुरुषोत्तम के समान तो नहीं किन्तु सामान्य मनुष्य के रूप में भी जीवन जीने हेतु एक स्पष्ट मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता है। इसमें प्रमुख है कि मनुष्य को सज्जन पुरुष के रूप में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, इस पर प्रकाश डालते हुए रामायण कहता है -

**न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।**
**समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ।।**

(युद्धकाण्डः113/44)

उत्तम पुरुष पापी , पुण्यात्मा अथवा अपराधी , सभी पर दया करते हैं क्योंकि ऐसा कोई भी जीव नहीं है , जिसने कोई अपराध न किया हो ।

**सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।**

(अरण्यकाण्डः68/24)

पराक्रमी शरणागत की रक्षा करने वाले तथा धर्मपरायण सज्जन पुरुष सभी स्थानों पर देखे जाते हैं।

**१.७ स्वजन की प्राथमिकता**

सदैव से ही इस विषय को लेकर बुद्धिमान् से बुद्धिमान् और ज्ञानी से ज्ञानी मनुष्य भी स्वयं को भ्रम की स्थिति में पाते हैं कि वह अपनों (रिश्तेदारों, नातेदारों के) पक्ष में खड़े रहें उनको प्राथमिकता दें या फिर दूसरों को जो गुणों में अधिक श्रेष्ठ हैं।

**गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।**

**निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ।।**

(युद्धकाण्डः 87/25)

पराये लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों तथा स्वजन कितने ही गुणहीन क्यों न हों, वह गुणहीन स्वजन भी गुणवान् पराये लोगों से अच्छे होते हैं। क्योंकि पराया-पराया ही होता है।

**यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।**

**स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ।।**

(युद्धकाण्डः 87/16)

जो व्यक्ति अपने पक्ष के लोगों का परित्याग करके दूसरे पक्ष के लोगों का साथ देता है। वह अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर पुनः उन्हीं ( दूसरे पक्ष ) के द्वारा मारा जाता है।

## १.८ स्वभाव

प्रत्येक मनुष्य का अपना एक स्वभाव होता है जिसे किसी कारणवश यदि वह भी छुपाता है तो बहुत समय तक नहीं छुपा सकता है। इसलिए मनुष्य को अपने स्वभाव में ही रहना चाहिए।

**प्रकृतिं गूहमानस्य निश्चयेन कृतिध्रुवा।**

(उत्तरकाण्डः प्रक्षिप्तः 2/26)

कोई अपनी प्रकृति को कितना भी छिपाना चाहे, किन्तु निश्चय ही वह प्रकट हो ही जाती है।

## १.९ अपकीर्ति

संसार में यश , कीर्ति की अवधि जन्म से जन्मोपरान्त समान महत्ता वाली होती है। इसलिए व्यक्ति को कीर्ति पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए । क्योंकि अपयश , अपकीर्ति तो न जीने देती है न मरने देती है। अपितु मरने के बाद भी वञ्चना ही दिलाती है।

**अकीर्तिर्गीयते यस्य लोके भूतस्य कस्यचित्।**

**पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते।।**

(उत्तरकाण्डः 45/12)

किसी भी मनुष्य का अपयश लोक में चर्चा का विषय बन जाता है और वह व्यक्ति अधम लोकों (नरक) में गिर जाता है। जब तक उसके अपयश की चर्चा होती है , तब तक वह उसी नरक में पडा रहता है।

**अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते।**

(उत्तरकाण्डः 45/13)

देवतागण लोकों में अपकीर्ति की निन्दा करते हैं तथा कीर्ति का सम्मान करते हैं।

**१.१० इन्द्रिय – निग्रह**

इस संसार की माया में उलझने अथवा इससे मुक्त होने के लिए ईश्वर ने हमें एकादश इन्द्रियाँ दी हैं जिसमे पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ और एक संकल्प-विकल्पात्मक मन है। प्रत्येक इन्द्रियों के अपने-अपने विषय निश्चित हैं जैसे कि आँख का सौन्दर्य रूप , नाक का गंध आदि। मुमुक्षुओं को इन्द्रियों के विषय-वासना से दूर रहना ही उनके हित में होता है। इसलिए इन्द्रियों को यथासम्भव उसके विषय से दूर रहने का प्रयास करते हुए व उसपर पूर्णतया नियंत्रण रखना चाहिए।

**इन्द्रियाणां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम्।**
**कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगोचरम्।।**

(उत्तरकाण्डः ,प्रक्षिप्तः 2/33)

प्रदुष्टानां हयानाम् इव = दुष्ट घोडों की भाँति, गोचरम् = विषयों की ओर, धावताम् = दौड़ने वाली इन्द्रियों को धैर्यपूर्वक विषयों से, संहृत्य = हटाकर, कुर्वीत धृत्या सारथ्यं = सारथीत्व को धारण करते हुए अर्थात् जिस प्रकार सारथी घोड़ों की लगाम को कसकर रथ को नियन्त्रण में रखता है उस प्रकार नियन्त्रित रखना चाहिए।

मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से स्वयं को सर्वदा निग्रह करना चाहिए। क्योंकि इनके कारण बड़े-बड़े से तपस्वियों का नाश हो जाता है, जैसे क्रोध में वशीभूत व्यक्ति सर्व प्रथम स्वयं का नाश करता है तत्पश्चात् अन्य को , क्योंकि क्रोध अग्नि जैसा होता है इसलिए पहले स्वयं को जलाता है।अतः क्रोध पे संयम रखना चाहिए।

**क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि।**
**क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ।।**

( सुन्दरकाण्डः 55/4)

क्रोध से अभिभूत ऐसा कौन व्यक्ति है, जो पाप नहीं करता ? क्रुद्ध व्यक्ति गुरुजनों की भी हत्या कर सकता है। क्रुद्ध पुरुष कठोर वाणी से सज्जनों पर भी आक्षेप करता है।

**तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति।**
**क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ।।**

(उत्तरकाण्डः प्रक्षिप्तः 2/22)

मनुष्य जो भी तपस्या, यज्ञ तथा दान करता है, उन सबको वह क्रोध के द्वारा विनष्ट कर देता है। अतः क्रोध का परित्याग कर देना चाहिए।

## १.११ क्षमा

**अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा।**

(बालकाण्डः 33/7)

जिस प्रकार स्त्रियों का सौन्दर्य बढाने का हेतु आभूषण होते हैं ठीक उसी प्रकार पुरुषों का सौन्दर्य क्षमा से बढ़ता है अर्थात् क्षमा ही पुरुष का आभूषण है।

**क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः।**
**क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां तिष्ठितं जगत्।।**

(बालकाण्डः 33/8)

क्षमा दान है , क्षमा सत्य है , क्षमा यज्ञ तथा पुत्री है। क्षमा यश है , क्षमा धर्म है तथा क्षमा पर ही यह संसार टिका हुआ है।

## १.१२ दान

दान का अत्यन्त महत्त्व रामायण में जगह-जगह वर्णित है। दान देने से मनुष्य का भाग्य भी बढ़ता है जिससे वह सुख से सम्पन्न होता है।

**दानं कार्यं सुखोदयम्।**

(बालकाण्डः 61/24)

दान करने से सुख उत्पन्न होता है अर्थात् सुख की प्राप्ति होती है।

किन्तु यदि आप दान दें और उसका घमंड करते हुए तिरस्कारपूर्ण तरीके से दान करते हैं तो न तो वह दान स्वीकार होता है और याचक के मन की खिन्नता, नकारात्मक भाव या अशुभत्व को जन्म देता है। बालकाण्ड कहता है -

**दातव्यमन्नं विधिवत् सत्कृत्य न तु लीलया।**

(बालकाण्डः 13/14)

किसी भी व्यक्ति को सत्कारपूर्वक विधिसहित अन्न प्रदान करना चाहिए, न कि तिरस्कारपूर्वक अथवा मजाक उड़ाते हुए। अर्थात् दान देते समय मनुष्य को श्रद्धावान् होना चाहिए।

यदि दान देना हो तो सत्पात्र को देना चाहिए। जिसके पास सम्पत्ति हो ऐसे व्यक्ति को धन देना दान नहीं कहलाएगा क्योंकि उनको इसकी आवश्यकता नहीं है। और ऐसा दान उस सम्पन्न व्यक्ति से किसी लाभ-विशेष की प्राप्ति के लिए भी माना जा सकता है। इसलिए कहा है -

**न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।**

(सुन्दरकाण्डः 41/3)

अर्थोपचितेषु = धन से संपन्न (धनी) को दान देना उचित नहीं है।

## १.१३ पुरुषार्थ

प्रिय! पुरुषार्थ-चतुष्टय के रूप में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रसिद्धि है ही जो हिन्दू संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों में अन्यतम है। इन चारों में ही मनुष्य के कर्तव्य, पराक्रम या उद्यम का ही भाव प्रकट होता है इसलिए स्थूल रूप में पुरुषार्थ शब्द 'पराक्रम' या 'उद्यमिता' इस अर्थ में ही रूढ हो गया है। इसी पुरुषार्थ पर बल देते हुए कहा गया है -

**दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।**
**न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ।।**

(अयोध्याकाण्डः 23/17)

जो व्यक्ति अपने, पुरुषकारेण = पुरुषार्थ के द्वारा दैव (प्रसङ्गवशात् दुर्भाग्य) को बांधने में सक्षम होता है, वह दैव के द्वारा अपने कार्य में व्यवधान उपस्थित करने पर शोक नहीं करता है (क्योंकि उसको इस बात संतोष रहता है कि उसने सम्पूर्ण तन-मन से प्रयास तो किया।)

**सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति।**
**कस्तस्य पौरुषेणार्थे महताप्यल्पचेतसः।।**

(युद्धकाण्डः 115/16)

जो पुरुष स्वयं के, अवमानम् = अपमान (को) का, अपने तेजसा = पराक्रम के द्वारा मार्जन नहीं करता है अर्थात् मिटाता नहीं है, उस मूढमति मनुष्य के पुरुषार्थ से क्या लाभ अर्थात् आप कितना भी अधिक परिश्रम या उद्यम कर लें किन्तु स्वयम् के अपमान का यदि निवारण न करें तो उस पुरुषार्थ का महत्त्व नहीं रह जाता है।

## १.१४ समक्ष रहने पर प्रीति

प्रिय अध्येता! यद्यपि स्वजनों पर प्रीति होती ही है क्योंकि वे हृदय में वास करते हैं तथापि सतत प्रीयमाण होने के लिए नीति कहती है कि मनुष्य को यथाशक्य समक्ष रहने का प्रयास करना

चाहिए। अगर आप दिखते रहेंगे तो आप पर स्नेह अक्षुण्ण रहता है अन्यथा स्नेह शनैः-शनैः कम होने लगता है। यही बात सुन्दरकाण्ड में कही गयी है -

**दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः।** (सुन्दरकाण्डः 26/41)

दृष्टिगोचर होने वाले स्वजनों के प्रति प्रीति बनी रहती है। तथा आँखों से ओझल हुए स्वजनों पर लोगों का प्रेम नहीं रहता है।

## १.१५ राजनीति

वैसे तो राजा के विषय में बड़े ही विस्तार से प्रभु श्रीराम के गुण-वर्णन-प्रसंग में चर्चा की जा चुकी है किन्तु राज्य करने हेतु राजा के गुण कैसे होने चाहिए या शासन की नीति के लिए क्या आवश्यक है इस विषय को यदि एक श्लोक में कहा जाए तो रामायण का यह श्लोक उसका एक अच्छा उदाहरण हो सकता है -

**अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।**
**कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ।।**

(अरण्यकाण्डः 33/20)

जो राजा, अप्रमत्तः = प्रमाद अर्थात् आलस्य से रहित, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा धर्मपरायण होता है, वह राजा चिरकाल तक शासन करता है।

**न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः।** (युद्धकाण्डः 22/16)

केवल, साम्ना = सामनीति अर्थात् शान्ति के द्वारा न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती है और न तो यश की ही प्राप्ति सम्भव है।

**बोधप्रश्न**

९. अयत्न से प्राप्त राज्य को अपने से योग्य के लिए त्यागने वाले के लिए क्या कहा गया है ? धन्य

१०. किस प्रकार से दिया गया दान अनुचित है? लीला (तिरस्कार) द्वारा

११. प्राप्त अपमान का मार्जन किससे करना चाहिए? पराक्रम से

१२. न _____ शक्यते कीर्ति। साम्ना

## १.१६ सारांश

वस्तुतः मनुष्य जिन बातों का बार-बार विचार करता है, धीरे-धीरे वैसी ही इच्छा हो जाती है।

फिर उसी इच्छा के अनुसार उसके सारी बातें, आचरण, कर्म और कर्मानुसारिणी गति होती है। अत: अच्छे आचरण और चरित्र के लिए अच्छे विचारों को लाना चाहिए। यदि श्रीराम के चरित्र के किसी एक गुण को ही अपने जीवन में उतार लिया जाए, तत्सम्बन्धी कथा का श्रवण-मनन व आचरण किया जाए तो उससे प्राप्त नैतिक सीख मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सहायिका सिद्ध होगी। मनुष्य को अपने दिए गये वचनों का पालन यथासंभव करना चाहिए। उसे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहना चाहिए जैसे अपने कुल की इस मर्यादा का पालन करते हुए प्रभु श्रीराम रहे। वह स्वयं इस बात की घोषणा पग-पग पर करते हैं। मैं अपने जीवन का त्याग कर सकता हूं एवं लक्ष्मण सहित तुम्हारा भी त्याग कर सकता हूं किन्तु एक बार जब मैंने प्रतिज्ञा कर ली तो फिर मैं उस प्रतिज्ञा का त्याग नहीं कर सकता हूं। राजा को प्रमादरहित, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा धर्मपरायण होना चाहिए।

## १.१७ शब्दावली

क्रतुमय = संकल्पवान्

अर्थपरो = धन या राज्य का लोभी

वसुमती = धरा

जरत्कपोतक इव = एक बूढ़े कबूतर की भांति

व्यापादित: = मार दिया

अर्थिनः = (हित की) अभिलाषा रखने वाले प्रार्थी (का)

अकर्तु: = अनुपकारी (पूर्व में रहा हो ऐसे) जन की

कार्यनिर्वृत्तिं चरेत् = कार्य को समाप्त करे अर्थात् सहायता करता

अपेयात् = पृथक् हो जाए

वेलाम् अतीयात् = भले ही अपनी मर्यादा त्याग दे

जीवितं जह्यां = जीवन को त्यागूं

अर्णवे = समुद्र में

पतेयम् = कूद सकता हूं

प्रदुष्टानां हयानाम् इव = दुष्ट घोडों की भाँति

गोचरम् = विषयों की ओर

धावताम् = दौड़ने वाली इन्द्रियों का (को)

संहृत्य = हटाकर

धृत्या सारथ्यं कुर्वीत = सारथीत्व को धारण करते हुए (नियन्त्रण) करे

अर्थोपचितेषु = धन से संपन्न

अवमानम् = अपमान को

तेजसा = पराक्रम के द्वारा

पुरुषकारेण = पुरुषार्थ के द्वारा

अप्रमत्त: = प्रमाद अर्थात् आलस्य से रहित

साम्ना = सामनीति अर्थात् शान्ति के द्वारा

## १.१८ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. श्रीराम का

२. कैकेयी

३. बूढ़े कबूतर के समान

४. पुराने कपड़ों के समान

५. नरक की

६. सुमित्रा

७. विपत्ति में

८. वनवास को

९. धन्य

१०. लीला (तिरस्कार) द्वारा

११. पराक्रम से

१२. साम्ना

## १.१९ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर

## १.२० सहायक ग्रन्थ सूची

रामायण ऑफ वाल्मीकि, अनुवादक - राबर्ट पी गोल्डमैन, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, अमेरिका

## १.२१ निबन्धात्मक प्रश्न

१. प्रभु श्रीराम के जीवन से मिलने वाली नैतिक शिक्षा पर प्रकाश डालिए।

२. नैतिक-शिक्षा के आलोक में भारत के गुणों पर प्रकाश डालिए।

३. नैतिक-शिक्षा की दृष्टि से रामायण के महत्त्व को रेखांकित कीजिए।

# इकाई – 2 महाभारत में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा

**इकाई की संरचना**

२.१ प्रस्तावना

२.२ उद्देश्य

२.३ आचार

२.४ काम-क्रोधादिशरीरस्थ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना

२.५ क्षमा एवं उसका महत्त्व

२.६ त्याग एवं उसका महत्त्व

२.७ दान व उसका महत्त्व

२.८ अहिंसा

२.९ गुरु पर श्रद्धा भाव

२.१० अतिथि-सत्कार का महत्त्व

२.११ उपकार और संगठन-शक्ति

२.१२ गुणी नैतिक मनुष्य की प्रशंसा

२.१३ अभिमान एवं असज्जनता

२.१४ असत्य का फल एवं अवसर-विशेष में उसकी 'अनिन्दा'

२.१५ आलस्य का दुष्फल

२.१६ दुर्गुणों से दु:ख की प्राप्ति

२.१७ धन का महत्त्व और उसके सदुपयोग हेतु निर्देश

२.१८ काल एवं कर्म पर विशेष बल

२.१९ सारांश

२.२० शब्दावली

२.२१ बोध प्रश्नों के उत्तर

२.२२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

२.२३ सहायक ग्रन्थ सूची

२.२४ निबन्धात्मक प्रश्न

## २.१ प्रस्तावना

प्रिय अध्येता! प्रथम पाठ्यक्रम के द्वितीय खंड के द्वितीय इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई में आप महाभारत में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा के कुछ सन्दर्भों का अध्ययन करेंगे। वस्तुत: सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय नैतिक शिक्षा से भरा पड़ा है जिसके अनुशीलन ने भारत को 'विश्वगुरु' के रूप में प्रतिष्ठित किया था, जिसका उद्घोष मनु महाराज सगर्व करते हुए नहीं थकते हैं-

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।**
**स्वम् स्वम् चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानव ।।**

लेकिन यह अपने देश का दुर्भाग्य ही रहा कि जब से भारत-माता दासता की बेड़ियों में जकड़ी गईं तब से उसके ज्ञान-वैभव का निरादर भी आरम्भ हो गया और विगत प्रायः १०० वर्षों से भारत ने शिक्षा में से नैतिकता रूपी धर्म का बहिष्कार करने में ही गौरव का अनुभव किया है। नैतिकता से ही चरित्र का निर्माण होता है। शिक्षा में से इस नैतिकता अर्थात् चरित्र को बहिष्कृत रखना धनापेक्षी-बुद्धियुक्त, सिद्धान्तविहीन एवं स्वार्थान्ध मनुष्य बनाने का हेतु मात्र हो सकता है न कि कुछ और । अत: ऐसी शिक्षा-नीति को 'आसुरी' भी कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

ऐसे में नैतिक शिक्षा आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है जिसकी निधि संस्कृत साहित्य है, विशेषकर पौराणिक साहित्य एवं रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थ। गत अध्याय में आपने रामायण में वर्णित नैतिक शिक्षा का संक्षेप में अध्ययन किया । इस अध्याय में आप महाभारत में वर्णित नैतिक शिक्षा का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

मित्र! जैसा कि पूर्व के अध्याय में भी मैंने इस बात को रेखांकित किया है कि नीति या नैतिक-शिक्षा चरित्र का विकास करती है जो किसी एक गुण पर आधारित नहीं होता है अपितु गुणों का समूह ही चरित्र का निर्माण करता है ।

नैतिक शिक्षा की पूर्णता इसी में है कि मनुष्य के लिए क्या करणीय है और क्या अकरणीय इसका अच्छी तरह से ज्ञान हो और इसके लिए चरित्र के गुण-धर्मों को समझना और उनके अच्छे-बुरे फलों को जानना अत्यावश्यक है इसके पहले के अध्याय में हमने रामायण के कुछ प्रसंगों के आधार पर मानवीय-गुणों पर विस्तार से चर्चा की क्योंकि रामायण, मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के चरित्र का चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है किन्तु इस अध्याय में हम महाभारत में उक्त नीतिगत-उपदेशों को आधार बनाकर मानव के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही पक्षों पर विचार करेंगे क्योंकि महाभारत के मुख्य-पात्रों पाण्डव-कौरव का काल द्वापरयुग की प्राय: समाप्ति का काल है जब अधर्म की क्रमशः वृद्धि और धर्म का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था, जहां धर्म और अधर्म का अर्ध-अर्ध भाग

या कहें कि दोनों की समान स्थिति थी। ऐसे में महाभारत के पर्वों में नीति और अनीति, धर्म और अधर्म दोनों को ही स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है। फलत: इस इकाई में भी आप दोनों ही पक्षों का अध्ययन करेंगे क्योंकि जैसा मैंने पूर्व में ही कहा कि नीति के साथ-साथ अनीति को भी जानना आवश्यक है।

तो आइए सबसे पहले कर्तव्य के आवश्यक निर्धारक तत्त्वों को जानें जिनमें से सर्वप्रमुख 'आचार' है।

## २.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- ❖ सदाचार के लक्षणों को निरूपित कर सकेंगे।
- ❖ क्षमा, त्याग, दान, अहिंसा, श्रद्धा जैसे गुणों के स्वरूप एवं महत्व को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- ❖ काम, क्रोध जैसे दुर्गुणों के स्वरूप एवं फल को समझा सकेंगे।
- ❖ अभिमान, असज्जनता आलस्य आदि दुर्गुणों के फल का निरूपण कर सकेंगे।
- ❖ काल एवं कर्म के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे।

## २.३ आचार

आङ् उपसर्गपूर्वक चर् धातु से घञ् प्रत्यय करणे पर 'आचार' शब्द उत्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'व्यवहार'। इसके पर्यायवाची के रूप में 'चरित्र', 'वृत्त', 'शील' आदि शब्द प्रसिद्ध हैं। महाभारत का अनुशासन-पर्व आचार के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहता है –

**सर्वागमानामाचार: प्रथमं परिकल्पते।**

**आचारप्रभवो धर्म: धर्मस्य प्रभुरच्युत: ।।**

अर्थात् सभी धर्मशास्त्रों में आचार को ही श्रेष्ठ माना जाता है। आचार से ही पुण्य का उदय होता है जिसके स्वामी श्रीभगवान् अच्युत नारायण हैं।

इस प्रकार नारायण के स्वामित्व वाली वस्तु का सेवन करने से निश्चय ही मनुष्य नारायण का प्रिय बन जाता है। अब चूंकि भगवान् ही हमारे पुण्य कर्मों का फल देने वाले हैं और वह पुण्य सदाचार से ही प्राप्त होता है इसलिए सभी शास्त्रों में आचार का प्राधान्यत्व बताया गया है। सदाचारी मनुष्य का सभी लोग आदर करते हुए उसका गौरव बढ़ाते हैं। अत: सभी लोगों को सदाचारी या सच्चरित्र बनाकर ही अपने जीवन को सार्थक बनाना। आचार से हीन मनुष्य को पापी कहा गया है और उसको तो

साक्षात् वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं। कहा है – 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'। यानी वो नित्य-प्रति वेद का पाठ भी कर ले या सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य को कंठ में भी रखे किन्तु यदि आचार से हीन हो तो वह पुण्य-फल का भागी नहीं हो सकता है।

इसलिए नैतिक-शिक्षा में सबसे पहले आचार या चरित्र की बात करना उचित ही है। अनुशासन पर्व की यह सूक्ति भी आचार से धर्म के उत्पन्न होने की बात करता है।

**आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते।** ( अनु० पर्व १०४/१५५ )

अर्थात् आचारप्रभवो = सदाचार से उत्पन्न (होता है) धर्म और धर्म से आयु बढ़ती है। क्योंकि धर्म से मनुष्य को आत्मिक या कहें कि मानसिक शान्ति मिलती है और मनुष्य मन से शान्त रहेगा तो उसे बी.पी., शुगर या मानसिक अवसाद जैसी बीमारियां नहीं होंगी और निरोग रहने से वह अधिक जी सकेगा। दूसरी बात यह भी समझनी चाहिए कि आप जब धर्म पर चलते हैं तो आपको अपने बड़ों का आशीर्वाद भी मिलता है उन सभी लोगों की प्रार्थनाएं व आशीर्वाद भी मिलता है जिनकी रक्षा या सहायता या सेवा आप धर्म पर चलते हुए करते हैं इसलिए इन सभी आशीर्वादों के फलस्वरूप आपके पुण्य-फल व आयु दोनों ही बढ़ती है।

## २.४ काम-क्रोधादिशरीरस्थ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि शरीर में स्थित शत्रु हैं जो मनुष्य का नाश करते हैं। कहा भी है 'जब नाश मनुज पर आता है पहले विवेक मर जाता है'। और यह विवेकशून्यता मात्र पतन का कारण होती है जो मनुष्य को न केवल इस लोक में अपितु मृत्यु के बाद भी कष्ट का कारण बनती है। इसलिए ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रंथों में इस बात को कहा ही है कि – 'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते'।

अर्थात् जो पाप आप करते हैं वह इस जन्म में ही नहीं अपितु अगले जन्म में भी आपका पीछा करता है और उसके कारण ही आप नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त होते हैं। तो यह काम-क्रोध आदि किस प्रकार से व्यक्ति की बुद्धि का एवं अंततः उस व्यक्ति का नाश करते हैं इस बात को तो भगवान् बड़े ही विस्तार से गीता – जो कि महाभारत के ही भीष्म पर्व का भाग है – के दूसरे अध्याय में कहते ही हैं -

**ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते॥**
**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥**

अर्थात् सांसारिक विषयों में मन लगाते-लगाते उनमें मनुष्य को अत्यधिक राग उत्पन्न हो जाता है और उस संग या राग या आसक्ति से उन-उन विषयों की प्राप्ति की इच्छा कामना अत्यधिक बलवती हो जाती है। इस काम या वासना से अभीष्ट वास्तु की प्राप्ति न होने पर या अभीप्सित मात्रा में न होने पर अथवा उससे त्याग होने पर या अप्राप्ति होने पर व्यक्ति को क्रोध आता है। इस क्रोध से व्यक्ति सम्मोहित = किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है आशय यह है कि सोचने-समझाने की शक्ति खो देता है उससे स्मृतिभ्रम = आगा-पीछा विचार करने की प्रकृति या सामर्थ्य का लोप हो जाता है जिससे मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह वही करता है जो नहीं करना चाहिए जिससे उसका नाश सुनिश्चित हो जाता है।

अत: सांसारिक वस्तुओं की कामना या वासना में मन को अधिक नहीं लगना चाहिए इसको लेकर मनुष्य को सदैव सावधान रहने की आवश्यकता है।

क्योंकि जैसा कि पूर्व में मैंने कहा काम आदि वासनाओं की पूर्ति न होने के कारण मनुष्य को क्रोध आता है। यही क्रोध-रूपी अग्नि उसी मनुष्य को जलाकर रख देती जो यह क्रोध करता है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति को मनुष्य अपना शत्रु मानता है वह सबसे बड़ा शत्रु नहीं अपितु मनुष्य के शरीर में ही निवास करने वाला क्रोध उसका सबसे बड़ा शत्रु है।

**क्रोध: शत्रु: शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम।**

(वनपर्व २०६.३२)

अर्थात् मनुष्य के स्वभाव में स्थित क्रोध ही उसका महान् शत्रु है।

**क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुन:।**

(वनपर्व २९.१)

अर्थात् क्रोध मनुष्यों को मारने वाला है और क्रोध ही (यदि जीत लिया जाये तो) अभ्युदय कराने वाला है।

**क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दु:खसञ्चितम्।**

(आदिपर्व ४२.८)

अर्थात् क्रोध प्रयत्नशील साधकों के कठिनता से अर्जित धर्म का नाश कर देता है।

**नाकार्यं न च मर्यादा नर: क्रुद्धोऽनुपश्यति।**

(वनपर्व २९.१८)

क्रोधी मनुष्य किसी कार्य को ठीक-ठीक नहीं समझ पाता। वह यह भी नहीं जानता कि मर्यादा क्या है और क्या अकरणीय है।

काम, क्रोध जैसी दुर्बलताओं को दृष्टिगत करते हुए शांतिपर्व कहता है -

**कामक्रोधावनादृत्य पितेव समदर्शनः।**

**शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः॥**

(शान्तिपर्व २४.१४ )

अर्थात् जो शासक, कामक्रोधावनादृत्य = काम और क्रोध की अवहेलना करके, शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय = शास्त्रीय विधि का आश्रय ले सर्वत्र पिता के समान समदृष्टि रखता है, वह कभी पाप से लिप्त नहीं होता।

इसी प्रकार काम-वासना पर भी नियन्त्रण की बात करते हुए इससे सदैव बचने की बात भी कही गयी है -

**दारसंग्रहणात् पूर्वं नाचरेन्मैथुनं बुधः।**

(अनु० पर्व १०४ )

दारसंग्रहणात् = विवाह से पूर्व, बुधः = बुद्धिमान् पुरुष मैथुन न करें।

यहीं तक नहीं अपितु दूसरे की स्त्रियों से भी काम-वासना का भाव नहीं रखने की बात कही गयी है -

**परदारासु न गन्तव्या सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।**

( अनु० पर्व १०४ - २० )

किसी भी वर्ण के पुरुष को, कर्हिचित् = कभी भी, परदारासु = परायी स्त्री से संसर्ग नहीं करना चाहिए।

काम, लोभ, वासना यहाँ तक कि ये शरीर भी अनित्य है इसलिए इनमें अनासक्ति का भाव रखने की बात बार-बार महाभारत कहता है और अनित्य वस्तुओं में इस प्रकार की अनासक्ति रखने वाले को 'पण्डित' कहा गया है –

**अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।**

**आरोग्यं प्रियसंवासो गृह्येदेषु न पण्डितः ॥**

(स्त्रीपर्व 2.25 )

अर्थात् रूप, यौवन-जीवन, धन का संग्रह, आरोग्य तथा प्रिय-जनों का एक साथ निवास ये सभी अनित्य हैं, अतः विद्वान् पुरुष इनमें कभी आसक्त न हों।

## बोध प्रश्न

१. सर्वागमानाम् _____ प्रथमं परिकल्पते।

२. संग से किसकी उतपत्ति होती है?

**३.** सम्मोह में कारण क्या है?

क्योंकि लोग काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष अथवा बालोचित चपलता के कारण धर्म के विरुद्ध कार्य करते तथा (श्रेष्ठ पुरुष का ) अपमान कर बैठते हैं। इस विषय में महाभारत भी कहता है -

**कामात् क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद् बाल्येन वा पुनः ।**
**विधकर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।।**

( द्रोणपर्व195/11)

इन वासनाओं में पड़े व्यक्ति को उसके दुष्परिणाम के बारे में अवश्य विचार करना चाहिए अथवा ऐसे व्यक्ति जो इन वासनाओं में लिप्त हैं उनको श्रेष्ठ व्यक्तियों या उनके शुभेच्छुओं के परामर्श पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए, ताकि वो काम-लोभ आदि दुर्बलताओं से स्वयं को दूर रख सकें; अन्यथा उनको बाद में पश्चात्ताप करना पड़ता है। जिससे कोई भी लाभ नहीं है। यही बात दुर्योधन आदि के साथ लागू होती है जिसे महाज्ञानी पितामह भीष्म, नीतिज्ञ विदुर और यहाँ तक कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी समझाते हैं तथापि वह वासनाओं के प्रति अपने मोह का त्याग न कर पाता है और अंततः उसका सर्वनाश हो जाता है।

इसी बात को स्पष्ट तौर पर महाभारत कहता है -

**उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते न हिताहिते।**
**आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः॥**

(स्त्रीपर्व १३.७ )

उच्यमान: = जो हित की बात कहने पर, भी हिताहित की बात को नहीं समझ पाता, वह अनये स्थितः = अन्याय का आश्रय लेकर, बड़ी भारी विपत्ति में पड़कर शोक करता है।

लोभ आदि दुर्बलताओं में फंसकर मनुष्य का पतन होता है इसी बात को अन्योक्ति से कहते हुए महाभारत कहता है -

**मधुः यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति।**
**स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येव यथा भवान्॥**

(स्त्रीपर्व १.३७ )

जो केवल ऊँचे स्थान पर लगे हुए मधु को देखकर वहाँ से अपने गिरने की सम्भावना की ओर से आँख बन्द कर लेता है, वह उस मधु के लालच से नीचे गिरने पर इसी तरह शोक करता है।

**आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम् ।**

**यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥**

( स्त्रीपर्व १.३५ )

मनुष्य को पहले ही, यथाक्षमम् = यथायोग्य, व्यवहार करना चाहिए, जिससे आगे चलकर उसे बीती हुई बात के लिये पश्चात्ताप करना पड़े।

यही कारण है कि इस पश्चात्ताप से बचने के लिए मनुष्य को पहले ही विवेक से काम लेना चाहिए। और विवेक से कार्य लेने के लिए मनुष्य को बुद्धि और मन को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि इस शरीर रूपी रथ की लगाम मन है जो बुद्धिरूपी सारथि के हाथों में है और यदि लगाम व् सारथि नियन्त्रित हों तो ऐसा व्यक्ति जितेन्द्रिय होता है। और यही कारण है कि जितेन्द्रिय व्यक्ति शान्त और आनन्द की अवस्था में रहता है, इसी बात को महाभारत कहता है -

**यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः ।**

**संतुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति ॥**

( स्त्रीपर्व ७.१८ )

हे राजा! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, क्रोधलोभनिराकृतः = क्रोध तथा लोभरहित, संतोषी एवं सत्यवादी होता है, वह शान्ति को प्राप्त करता है।

## २.५ क्षमा एवं उसका महत्त्व

मनुष्य को क्षमाशील होना चाहिए। जो अपनी गलती को मानकर सही अर्थों में पश्चात्ताप करके आपसे क्षमा के प्रार्थना करे उसे क्षमा करना ही धर्म है विशेषकर जब आप उससे हर दृष्टि से बलशाली हों। ऐसे में बल के दर्प को एक तरफ रखकर दोषी को क्षमा करना नीति है। महाभारत ने क्षमा की बड़ी प्रशंसा करते हुए उसका बड़ा महत्त्व बताया है-

**क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।**

**क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञ क्षमा शमः ॥**

(वनपर्व २९.४० )

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है। क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है। क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है। क्षमा यज्ञ है। क्षमा मनोनिग्रह है।

क्षमाशील व्यक्ति की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए महाभारत कहता है –

**क्षमावांस्तीर्थमुच्यते ।**(आश्व.पर्व 92)

क्षमाशील व्यक्ति ही तीर्थ है। क्षमा या अभयदान देने वाले व्यक्ति को साक्षात 'तीर्थ' की संज्ञा दे देना इस गुण के महत्त्व को बताता है। इसके अतिरिक्त उन्हें 'साधुपुरुष' की संज्ञा भी दी गयी है।

**क्षमासारा हि साधवः ।**(भवि० पर्व ११३.१६)

क्षमा के फल का भी विस्तार से वर्णन करते हुए कहा गया है -

**न तत् क्रतुसहस्त्रेण नोपवासैश्च नित्यशः ।**
**अभयस्य च दानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥**
(स्त्रीपर्व ७.२६ )

अर्थात् अभयदान से मनुष्य जिस फल को पाता है, वह उसे क्रतुसहस्त्रेण = सहस्त्रों यज्ञ को करने से एवं नित्यप्रति उपवास करने से भी नहीं मिल सकता है।

## २.६ त्याग एवं उसका महत्त्व

त्याग मनुष्य के सर्वाधिक प्रशंसित गुणों में से एक है। मनुष्य को त्याग का गुण वस्तुत: प्रकृति से सीखना चाहिए। वृक्ष सभी प्रकार की विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए भी अपना फल स्वयं के लिए अपितु दूसरों के लिए त्याग देते हैं, जो त्याग की पराकाष्ठा है। मनुष्य को भी प्रकृति से सीखना चाहिए। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने तो लंका परर विजय प्राप्त करके भी उसके आधिपत्य को स्वीकार न करके उसका त्याग ही किया। त्याग की महिमा तो भारतीय संस्कृति में बड़े ही विस्तार से गाई जाती रही है जिसकी महत्ता को रेखांकित करते हुए महाभारत भी कहता है –

**ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।** (सभापर्व ६२ / ११)

अर्थात् गांव के हित के लिये कुल को छोड़ देना चाहिए। कभी यदि ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाए कि किसी मनुष्य के कुल के कृत्यों के कारण अथवा अन्य किसी आवश्यक कारण से उसके गांव की हानि हो रही हो तो मनुष्य को अपने कुल को भी छोड़ने में तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए।

**ग्रामं जनपदस्यार्थे त्यजेत् ।** ( सभापर्व ६२ / ११ )

अर्थात् देश के हित के लिये गांव को त्याग देना चाहिये।

**आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।** (सभापर्व ६२/११)

अर्थात् स्वयं के लिये = यदि प्रसंग उपस्थित हो जाए तो स्वयं के चरित्र के उत्थान के लिए, सारी पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिये।

## २.७ दान व उसका महत्त्व

दान भी सदाचारी मनुष्य का बहुत महत्त्वपूर्ण व आवश्यक गुण है इसलिए इसकी बात

महाभारत में पग-पग पर की गयी है। महादानी कर्ण को कौन भूल सकता है जिनकी ख्याति में सर्वाधिक भूमिका उनके इसी गुण की थी। दान को गुणों में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि -

**दानं हि महती क्रिया।** (अनु० पर्व ९.२६ )

दान महान् पुण्यकर्म है।

इतना ही नहीं अपितु इसे सबसे बड़ी मानवीय सम्पदा भी कहा गया है -

**नास्ति दानसमो निधिः।** (अनु० पर्व ६२.९२ )

दान के समान कोई निधि नहीं है।

इसलिए दान देने वाले व्यक्ति को पवित्र माना गया है -

**दानं ददत् पवित्री स्यात्।** (अनु० पर्व ९३-१२)

सदा दान देने वाला व्यक्ति पवित्र हो जाता है। उसका यह एक गुण उसमें शुचिता का आधान करता है इसलिए मनुष्य को यथाशक्ति दान अवश्य देना चाहिए।

किन्तु दान देने वाले जितना ही महत्त्वपूर्ण दान लेने वाला भी है। सभी दान लेने के अधिकारी भी नहीं हो सकते हैं। प्राचीन परम्परा में अध्ययन-अध्यापन कर्म में निरत रहने वालों के लिए दान लेना एवं दान देना भी मुख्य कर्म माना गया था। दूसरे शब्दों में कहें तो दान लेने की पात्रता होनी भी अत्यावश्यक है यदि व्यक्ति कुपात्र है तो ऐसे व्यक्ति को दिया गया दान एवं उसे लेने वाला दोनों ही पुण्य के भागी नहीं होते हैं।

इस प्रसंग में मैं इतना ही कहूंगा की वर्त्तमान समय में हम ये देखते हैं कि सड़कों, चौराहों इत्यादि पर लोग भीख माँगते खड़े रहते हैं तो ऐसे में डाटा को यह देखना महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक हो जाता है कि वह दान ग्रहण करने वाले की पात्रता को भी अच्छी तरह से परख ले नहीं तो बिना परिश्रम के मुफ्त में खाने या भिक्षादान ग्रहण करने की आदत अकर्मण्यता एवं अन्य अपराधों को जन्म दे सकती है।

इसी प्रकार ग्रह इत्यादि के शान्ति के लिए भी अथवा व्रत-पर्व आदि में दिए जाने वाले दान और उसे लेने वाले गृहीता को भी अधिकारी सत्पात्र होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में महाभारत स्पष्ट कहता है -

**काष्ठैराद्रैर्यथा वह्निरुपस्तीर्णो न दीप्यते।**
**तपः स्वाध्यायचारित्रैरेवं हीनः प्रतिग्रही॥** ( शा० पर्व ३६.४१ )

जैसे गीली लकड़ी से, उपस्तीर्ण = ढकी हुई, आग प्रज्वलित नहीं होती, उसी प्रकार तपस्या, स्वाध्याय तथा सदाचार से हीन ब्राह्मण यदि दान ग्रहण कर ले तो वह उसे पचा नहीं सकता।

**ग्रामो धान्यैर्यथा शून्यो यथा कूपश्च निर्जलः।**

**यथा हुतमनग्नौ च तथैव स्यान्निराकृतौ॥** ( शा० पर्व ३६.४८ )

जिस प्रकार अन्नहीन ग्राम, जलरहित कुआँ और राख में की हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार निराकृतौ = नाकारे अयोग्य मूर्ख (ब्राह्मण) को दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही है।

## २.८ अहिंसा

अहिंसा पर भी महाभारत बड़ा बल देता है -

**अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमं तपः।**

**अहिंसा परं दानम्। अहिंसा परमो दमः॥**

(अनु . पर्व 116/28)

अर्थात् अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा परम तपस्या है। अहिंसा परम दान है। अहिंसा परम संयम है।

## २.९ गुरु पर श्रद्धा भाव

गुरु मनुष्य को अज्ञान रूपी अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। वह न केवल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान कराता है अपितु अपने सदाचरण से शिष्य को भी सत्कर्मों हेतु प्रेरित करता हुआ सदैव उसके कल्याण की ही कामना करता है। गुरु ही अविद्या अर्थात् व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ विद्या अर्थात् परमेश्वर की साधना एवं उसकी प्राप्ति में एकमात्र सहायक होता है। इसीलिए तो कहा भी है – 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाएं। बलिहारी गुरु आपणो जो गोविन्द दियो बताए'। महाभारत भी गुरु को 'तीर्थ' की संज्ञा देते हुए उसके सम्मान व सत्कार की बात करता है -

**गुरुतीर्थं परं ज्ञानमतस्तीर्थं न विद्यते।** (आश्व० पर्व ९२ )

अर्थात् गुरुरूपी तीर्थ से परमात्मा का ज्ञान होता है, इसलिये उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है।

**गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद् ब्रह्महत्यया।** (अनु० पर्व २२-२९)

अर्थात् गुरु के साथ, चालीककरणं = कपटपूर्ण व्यवहार करना, ब्रह्महत्या के समान पाप माना गया है।

**बोध प्रश्न**

४. क्रतुसहस्र से बढ़कर किसका फल माना गया है?

५. मधुः यः केवलं दृष्ट्वा _____नानुपश्यति।

६. दानं ददत् _____ स्यात्।

७. गुरु के साथ कपट को किस श्रेणी का पाप माना गया है?

## २.१० अतिथि-सत्कार का महत्त्व

अतिथि को हिन्दू संस्कृति में देवता की संज्ञा देकर उनके नित्य सेवा की बात कही गयी है। अतिथि के सम्मान का निर्देश देते हुए महाभारत कहता है -

**अर्चयेद् भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम्।**

(अनु. पर्व 63/11)

अर्थात् भूतिमन्विच्छन् = कल्याण की इच्छा रखने वाले, गृहस्थ को घर मे आये अतिथि का सत्कार करना चाहिए।

यही कारण है कि महाभारत अतिथि के सत्कार को सबसे बड़ा धर्म मानता है -

**अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।**
**नान्यस्तस्मात् परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः।।**

(अनु . पर्व 2/70)

जिस गृहस्थ के घर पर आया हुआ अतिथि पूजित होकर जाता है, उसके लिए उससे बढकर दूसरा कोई धर्म नहीं है ऐसा मनीषी पुरुष कहते हैं।

अतिथि का यह पूजन या सत्कार किस प्रकार से किया जाना चाहिए इसको व्याख्यायित करते हुए महाभारत कहता है -

**चक्षुर्दद्यान् मनो दद्याद् वाचं दद्यात् सुभाषिताम्।**
**उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः।।**

(वनपर्व 2/56)

अर्थात् अतिथि को नेत्र दे = प्रेम भरी दृष्टि से देखे, मन दे = मन से उसके प्रति उत्तम भाव रखे, मीठे वचन बोले = जिन वचनों से वह प्रसन्न होवे ऐसी बात कहे, और उठकर उसके लिए आसन दे। यह शाश्वत धर्म है।

**नातिथिस्तेऽवमन्तव्यः।** ( अनु . पर्व 2/46)

अर्थात् किसी भी दशा में अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए।

अतिथि का पूजन (विधिपूर्वक सत्कार) न करने से मनुष्य के पुण्य की हानि होती है इस बात को महाभारत स्पष्ट तौर पर कहता है -

**पात्रं त्वतिथिमासाद्य शीलाढ्यं यो न पूजयेत्।**

**स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।।**

(अनु . पर्व 2/93)

जो गृहस्थ सुपात्र और सुशील अतिथि को, आसाद्य = पाकर, उसका यथोचित सत्कार नहीं करता, वह अतिथि उस गृहस्थ को अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

इसलिए हमें चाहिए कि देवता की भांति यथाशक्ति यथासम्भव अतिथि का सम्मान करें।

## २.११ उपकार और संगठन-शक्ति

मनुष्य को सदैव परोपकारी होना चाहिए और जो व्यक्ति उस पर उपकार करे, अवसर मिलने पर उसको उस उपकार के बदले में उससे बढ़कर प्रति-उपकार करना चाहिए, यही सत्पुरुषों का कर्तव्य है।

**यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद् बहुगुणं ततः।** (आदिपर्व १६१ / १५)

अर्थात् दूसरा मनुष्य उसके लिए जितना उपकार करे उससे कई गुना अधिक प्रत्युपकार स्वयं उसके प्रति करना चाहिये।

इसी प्रकार संगठन की शक्ति पर जोर देते हुए महाभारत कहता है -

**सर्वथा संहतैरेव दुर्बलैर्बलवानपि।**

**अमित्रः शक्यते हन्तुं मधुहा भ्रमरैरिव॥** (वनपर्व ३३/७०)

जैसे मधुमक्खियाँ संगठित होकर मधुहा = मधु को हानि पहुंचाने वाले अर्थात् मधु निकालने वाले को मार डालती हैं उसी प्रकार भले ही चाहे दुर्बल क्यूं न हों किन्तु सर्वथा, संहतैः = संगठित रहने वाले मनुष्यों द्वारा, बलवान् शत्रु भी मारा जा सकता है।

## २.१२ गुणी नैतिक मनुष्य की प्रशंसा

**अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतञ्च।**

**पराक्रमश्चाबहुभाषिता दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥**

(उद्यो० पर्व ३३.९९ )

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान देना और कृतज्ञता-ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

प्रिय अध्येता! ऊपर जितने भी गुण दान, क्षमा, त्याग, अहिंसा, उपकार आदि कहे गए हैं वे सभी आचरणीय एवं अनुकरणीय हैं किन्तु मनुष्य को इस सम्बन्ध में यह नीति भी भली-भांति समझनी चाहिए कि प्रसंग अथवा अवसर के अनुसार ही इन गुणों की गुरुता या लघुता का आंकलन किया

जाता है ऐसा नहीं है कि जब भी जो भी सद्गुणों से प्रेरित कार्य किया उन सबका समान ही फल या प्रशंसा प्राप्त होती है। महाभारत इस नीतिगत तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहता है –

**दानं च सत्यं तत्त्वं वा अहिंसा प्रियमेव च।**

**एषां कार्यगरीयस्त्वाद् दृश्यते गुरुलाघवम्॥**

( वनपर्व १८१.४ )

अर्थात् दान, सत्य, तत्त्व, अहिंसा और प्रियभाषण इनकी गुरुता और लघुता कार्य की महत्ता के अनुसार देखी जाती है।

इसलिए सद्गुणी व्यक्ति को बुद्धिमान् एवं नीतिवान् भी होना चाहिए।

मित्र! ये तो हुई गुणों की बात इसके अतिरिक्त कुछ दुर्गुणों या कमियों पर भी बात करना आवश्यक है ताकि मनुष्य को इनका ज्ञान हो सके और वो इनसे यथासंभव बचने का उपाय करे।

## २.१३ अभिमान एवं असज्जनता

मनुष्य को अभिमान एवं असज्जनता से बचना चाहिए क्योंकि ये मनुष्य को पापी बनाते हैं जिससे अंततः कष्ट ही भोगना पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण इन दुर्गुणों से अर्जुन को सावधान करते हुए इन्हें 'आसुरी सम्पदा' बताते हैं -

**दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।**

**अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥** ( भीष्मपर्व 40/4)

अर्थात् हे पार्थ! पाखण्ड , घमण्ड , अभिमान , क्रोध , कठोर वाणी एवं अज्ञान ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

इन दुर्गुणों में निन्दा भी सम्मिलित है जो असज्जनता का हेतु बनती है -

**परिवादोऽसतामिव।** (वनपर्व 313/50)

अर्थात् (दूसरों की ) निन्दा करना असज्जनता ( के समान ) है।

## २.१४ असत्य का फल एवं अवसर-विशेष में उसकी 'अनिन्दा'

मिथ्या-भाषण या असत्य (झूठ) बोलने की निंदा सर्वत्र की गयी है और मिथ्याभाषी को घोर पाप का भागी भी बताया गया है। महाभारत कहता है -

**यन्मन्त्रे भवति वृथोपयुज्यमाने ,**

**यत् सोमे भवति वृथाभिषूयमाणे।**

**यच्चाग्नौ भवति वृथाभिहूयमाने,**

**तत् सर्वं भवति वृथाभिधीयमाने।।**

(अनु . पर्व 7/28)

अर्थात् वेदमन्त्रों का, वृथोपयुज्यमाने = अशुद्ध या निष्प्रयोजन (जहां उस मन्त्र की आवश्यकता न हो वहां) उच्चारण करने पर जो पाप लगता है, सोमयाग में, वृथाभिषूयमाणे = दक्षिणा आदि न देने के कारण व्यर्थ करने पर जो दोष लगता है तथा विधि और मन्त्र के बिना अग्नि में, वृथाभिहूयमाने = निरर्थक आहुति देने पर जो पाप होता है, वह सारा पाप, वृथाभिधीयमाने = मिथ्या भाषण करने से प्राप्त होता है।

किन्तु विशेष परिस्थितियों में असत्य-भाषण का दोष या पाप नहीं लगता है जैसे -

**प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये।**

**नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत्।।**

**अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः**।(कर्णपर्व 69/62)

प्राणात्यये = प्राणसङ्कट में, विवाह में, समस्त, ज्ञातिवधात्यये = कुटुम्ब के प्राण पर संकट आने के समय में, नर्मण्यभिप्रवृत्ते = हास–परिहास होने पर बोला गया असत्य, मृषा = असत्य नहीं होता। धर्मज्ञ विद्वान् इस अवसर पर मिथ्या भाषण को पाप नहीं समझते।

इसी प्रकार कर्णपर्व में भी आया है -

**विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे।**

**विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ।।**( कर्णपर्व 69/33)

विवाहकाल में, रति के समय में, किसी के प्राणों पर संकट आने में, सर्वस्व अपहरण होने पर तथा ब्राह्मण की भलाई में असत्य बोलना चाहिए। इस पाँच प्रकार के झूठ में पाप नहीं लगता।

## २.१५ आलस्य का दुष्फल

मनुष्य को आलसी नहीं होना चाहिए क्योंकि यह मनुष्य का नाश करता है। इस विषय में महाभारत में भी बहुत सारे उपदेश प्राप्त होते हैं -

**अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम्।**

**निःसंशयं फलं लब्ध्वा दक्षो भूतिमुपाश्नुते ॥** (वनपर्व ३२/४२)

जो मनुष्य आलस्य के वश में पड़कर सोता रहता है, उसे दरिद्रता प्राप्त होती है।

**अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्त्तते।**

**वृथा श्राम्यति सम्प्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना॥** (अनु० पर्व ६.२० )

मनुष्य के योग्य कर्म न करके जो पुरुष केवल दैव का अनुसरण करता है, वह व्यर्थ ही कष्ट उठाता जैसे- कोई स्त्री नपुंसक पति को पाकर।

**नास्ति सिद्धिरकर्मणः।** (शान्तिपर्व १० / २६)

अकर्मण्य पुरुष को कभी सिद्धि नहीं मिलती।

**२.१६ दुर्गुणों से दुःख की प्राप्ति**

**स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थितम्।**

**दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः॥** (वनपर्व १३.७)

स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जुआ खेलना, शिकार और मद्यपान-ये चार प्रकार के काम जनित दुःख बताये गये हैं; जिनके कारण मनुष्य अपने धन-ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है।

**ईर्ष्या घृणी न संतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।**

**परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥** (उद्यो० पर्व ३३.९०)

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा शङ्कित रहने वाला और दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करने वाला ये छः सदा दुःखी रहते हैं।

**२.१७ धन का महत्त्व और उसके सदुपयोग हेतु निर्देश**

धन की प्रकृति को बताते हुए द्रोण पर्व में कहा गया है कि 'चञ्चलाश्च विभूतयः' अर्थात् धन-ऐश्वर्य चञ्चल है यह कहीं एक जगह टिककर नहीं रहता है इसलिए भीष्मपर्व में कहा गया है '**अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्' अर्थात्** पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। इसलिए न तो इसका गलत कार्यो से अर्जन करना चाहिए और न ही इसका गलत कार्यों में विनियोग करना चाहिए अपितु सत्कर्मों में धन का उपयोग करने से प्रतिष्ठा व पुण्य दोनों की ही प्राप्ति मनुष्य को होती है। कहा गया है कि **धनात् धर्मः प्रवर्धते** ( शान्तिपर्व 8/22) अर्थात् धन से धर्म की वृद्धि होती है। इसी प्रकार शान्तिपर्व 8/23 कहता है **धनाद्धि धर्मः स्रवति** अर्थात् धन से ही धर्म का स्रोत बहता है।

**अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः सम्भृतेभ्यस्ततस्ततः।**

**क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः।।** (शान्तिपर्व 8/16)

जैसे पर्वतों से बहुत – सी नदियाँ बहती रहती हैं , उसी प्रकार बढे हुए संचित धन से सब प्रकार के शुभ कर्मों का अनुष्ठान होता रहता है ।

धन के उपयोग पर महाभारत में बहुत ध्यान दिया गया है इसमें बार-बार पात्र और अपात्र को परखकर अयोग्य को धन देने और सत्पात्र को धन न देने की निन्दा की गयी है -

**अनर्हते यद ददाति न ददाति यदर्हते ।**

**अर्हानर्हा परिज्ञानाद् दानधर्मोऽपि दुष्करः ।।**

( शान्तिपर्व 26/29)

लोग अधिकारी को धन नहीं देते और, अनर्हते = अनधिकारी को दे डालते हैं , योग्य – अयोग्य पात्र का ज्ञान न होने से दान – धर्म का सम्पादन बहुत कठिन है।

**लब्धानामपि वित्तानां बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।**

**अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्।।** ( शान्तिपर्व 26/31)

प्राप्त हुए धन का उपयोग करने में दो प्रकार की भूलें हुआ करती हैं , जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए। पहली भूल है अपात्र को धन देना और दूसरी है सुपात्र को धन न देना।

**२.१८ काल एवं कर्म पर विशेष बल**

हिन्दू संस्कृति में यह स्पष्ट मान्यता है कि समय से पहले न तो कोई कार्य संभव है और न ही बिना कर्म किए फल की प्राप्ति हो सकती है।

महाभारत इस समय की निश्चितता का संकेत करते हुए कहता है –

बालक समय आये बिना न जन्म लेता है, न मरता है और न असमय में बोलता ही है। यहां तक कि बीज-बोने की भी समय निर्धारित है जिसके बिना फसल की उत्पत्ति संभव नहीं है –

**नाकालतो रोहति बीजमुप्तम्।** (शान्तिपर्व २५ / ११ )

अर्थात् समय के बिना बोया हुआ बीज भी नहीं उगता है।

महाभारत कहता है कि हर कार्य बिना समय के सम्पन्न नहीं हो सकता है **'नाकालतो यौवनमभ्युपैति'** (शान्तिपर्व २५.११) अर्थात् समय के बिना जवानी नहीं आती।

महाभारत हर घटना का समय निर्धारित है इस बात का संकेत तो करता ही है अपितु इसके साथ ही समय को व्यर्थ गंवाने के प्रति भी सचेत करते हुए कहता है -

**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।**

**न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्।।** (शान्तिपर्व १७५.१५ )

अर्थात् कल किया जानेवाला काम आज ही पूरा कर लेना चाहिये। जिसे सांयकाल में करना है, उसे प्रात:काल में ही कर लेना चाहिये, क्योंकि मौत यह नहीं देखती है कि उसका काम अभी पूरा हुआ या नहीं।

इसी प्रकार कर्म करने और तदनुसार फल-प्राप्ति के प्रति भी संकेत महाभारत में मिलते हैं -

**यथा मृत्पिण्डतः कर्त्ता कुरुते यद् यदिच्छति।**

**एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते॥** (अनु० पर्व १.७४)

अर्थात् जैसे कुम्हार मिट्टी के लोंदे से जो-जो (बर्तन) चाहे बना लेता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही सब कुछ पाता है।

**यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः।**

**सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥** (अनु० पर्व ६.६ )

अर्थात् किसान खेत में जैसा बीज बोता है, उसी के अनुसार उसको फल मिलता है। इसी प्रकार व्यक्ति पुण्य या पाप, जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है।

**बोध प्रश्न**

८. उत्थाय च _____ दद्यात् ।

९. अमित्रः शक्यते हन्तुं _____भ्रमरैरिव ।

१०. धन के दान में कौन सी २ भूलों की संभावना है?

## २.१९ सारांश

सभी धर्मशास्त्रों में आचार को ही श्रेष्ठ माना जाता है। आचार से हीन मनुष्य को पापी कहा गया है और उसको तो साक्षात् वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं। सांसारिक वस्तुओं की कामना या वासना में मन को अधिक नहीं लगना चाहिए इसको लेकर मनुष्य को सदैव सावधान रहने की आवश्यकता है। लोभ आदि दुर्बलताओं में फंसकर मनुष्य का पतन होता है। क्षमाशील व्यक्ति ही तीर्थ है। दान के समान कोई निधि नहीं है। अतिथि का पूजन (विधिपूर्वक सत्कार) न करने से मनुष्य के पुण्य की हानि होती है। पाखण्ड , घमण्ड , अभिमान , क्रोध , कठोर वाणी एवं अज्ञान ये सब आसुरी सम्पत्ति हैं जिनका बुद्धिमान् मनुष्य को संचय नहीं करना चाहिए।

## २.२० शब्दावली

१. आचारप्रभवो = सदाचार से उत्पन्न

२. कामक्रोधावनादृत्य = काम और क्रोध की अवहेलना करके

३. दारसंग्रहणात् = विवाह से

४. अनये = अन्याय में

५. उपस्तीर्ण = ढकी हुई,

६. निराकृतौ = नालायक में (उक्त प्रसङ्गवशात् - के लिए)

७. अनर्हते = अनधिकारी के लिए

## २.२१ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. आचार:

२. काम

३. क्रोध

४. क्षमा (अभयदान) का

५. प्रपातं

६. पवित्री

७. ब्रह्महत्या

८. आसनम्

९. मधुहा

१०. संदेह के कारण अपात्र को दान देना और पात्र को दान न देना

## २.२२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर

## २.२३ सहायक ग्रन्थ सूची

१. भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार ग्रन्थ अकादमी

२. मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

## २.२४ निबन्धात्मक प्रश्न

१. महाभारत के सन्दर्भों को उद्धृत करते हुए आचार के महत्त्व को प्रतिपादित कीजिए।

२. महाभारत के अनुसार काम, क्रोध आदि दुर्बलताओं के स्वरूप और उनके फल का विचार कीजिए।

३. महाभारत के अनुसार किन्हीं चार सद्गुणों का उल्लेख कीजिए।

# इकाई – 3 श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार नैतिक मूल्यांकन

**इकाई की रूपरेखा**

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त परिचय
3.3.1 भगवद्गीता का तात्पर्य
3.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित नैतिक मूल्यांकन
3.3 सारांश
3.4 पारिभाषिक शब्दावली
3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

## 3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'भारतीय वांगमय में नैतिक शिक्षा' VAC-10 से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति, नीतिग्रन्थों, बाल्मीकी रामायण तथा महाभारत में प्रतिपादित नैतिक शिक्षाओं का अध्ययन कर लिया है। अब आप भारतीय सनातन परम्परा की संवाहिका तथा स्वयं पद्मनाभ भगवान कृष्ण के द्वारा गायी गयी 'श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा' का अध्ययन करने जा रहे हैं।

श्रीकृष्णस्य द्वारा गीयते इति गीता। अर्थात् जो भगवान श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द से गायी गयी हो उसका नाम 'गीता' है। गीता सनातन संस्कृति का प्राण है। भक्ति, ज्ञान और मोक्ष का ऐसा संगम है गीता जिसके प्रवाह में भारतीय संस्कृति और सनातन परम्परा निरन्तर बह रही है।

मानव मात्र को पुरूषार्थ की प्राप्ति का सर्वोतम स्रोत है – श्रीमद्भगवद्गीता। जहॉ तक नैतिक मूल्यों की बात है तो सम्पूर्ण गीता जी में नैतिक मूल्यों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलता है। आइए हम सभी उस गीता में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का अध्ययन करते हैं।

## 3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- गीता किसे कहते है।
- गीता का महत्व क्या है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित नैतिक मूल्य कौन-कौन से है।
- गीता का रहस्य क्या है।
- गीता जी के नैतिक मूल्यों को अपनाकर कैसे मनुष्य अपना जीवन निर्वाह कर सकता है।

## 3.3 श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता देश-काल से परे वैश्विकसंघटना का ग्रन्थ है और गीता की विचारसम्पदा वैश्विक मानव के जीवनपथ का पाथेय है। आज के युग में प्रचलित सम्प्रदायवाद और धर्मनिरपेक्षतावाद की संकीर्ण मानसिकता को अस्तित्व विहीन करता भगवद्गीता का वैचारिक आन्दोलन मानवीय ऊर्जा को सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर करते हुए मानव को मानव बनने में जीवनाधायक तथा वैश्विक मानवीय मूल्याधारित मानवसभ्यता को विकसित करनेवाला महान् प्रकाशस्तम्भ है।

भगवान् की दिव्यवाणी को समाहित की हुई जगत् प्रसिद्ध भगवद्गीता के विषय में या उसका परिचय

कराना, सूर्य को दीपक से दिखलाने का एक बचकाना प्रयत्न है। यह दिव्य ग्रन्थ स्वयं ही अपनी तेजस्विता से प्रकाशमान होने के कारण अपना परिचय दे देता है।

मानव मात्र के लिए यह जिज्ञासा का प्रश्न है कि जो गीता अपने स्वजनों के साथ युद्ध करने को बड़ा भारी कुकर्म समझकर खिन्न होनेवाले अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये बताई गई है। उस गीता में ब्रह्मज्ञान से या भक्ति से मोक्ष प्राप्त करने की विधि का या मोक्षमार्ग का विवेचन क्यों किया गया है? यह शंका इसलिए और भी दृढ होती है कि गीता की किसी भी टीका में इस शंका का योग्य उत्तर दूँढने से भी नहीं मिलता है। किन्तु पं. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कृत श्रीभगवद्गीतारहस्य नामक ग्रन्थ का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मूलत: गीता निवृत्तिप्रधान नहीं है, वह तो कर्म प्रधान है और अधिक क्या कहें, गीता में अकेला 'योग' शब्द ही 'कर्मयोग' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तत्पश्चात् महाभारत, वेदान्तसूत्र, उपनिषद् और वेदान्तशास्त्र-विषयक अन्यान्य संस्कृत तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से भी वही, गीतारहस्य ग्रन्थोक्त-मत दृढ होने पर समझा जा सकता है कि गीता का प्रतिपाद्यविषय प्रवृत्तिप्रधान है।

भगवद्गीता भारतीय दर्शनशास्त्रों के महत्त्वपूर्ण एवं सुसम्बद्ध विचारों का एक हृदयावर्जक समुच्चय है, या यों कहिये कि अखिल सृष्टि का सविता और मानवजाति को अहर्निश अशान्त करनेवाले तापत्रय का विनाशक, सच्चिदानन्द-योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रण-भूमि में विषाद-ग्रस्त होकर विपन्नावस्था में पडे हुए अर्जुन को संजीवनी के रूप में दिये गये सुसंगत अध्यात्मिक उपदेशों का समाहार है, जिसे महर्षि वेदव्यास ने एक ग्रन्थ के रूप में परिणत किया है, वह आज भारत के धर्म और नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में सर्वातिशायी सर्वमान्य ग्रन्थ है।

भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निःसृत इस अमूल्य गीता की संस्कृत इतनी सुन्दर और सरल है कि अल्पप्रयास से ही साधारणजन इसे पढ सकता है, और सहज ही समझ सकता है, परन्तु भाव इतना गंभीर है कि आजीवन निरन्तर स्वाध्याय करते रहने पर भी उसका अन्त (भाव) नहीं पाया जा सकता है। गीता के विषय में यह जो कहा जाता है कि— "गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः" केवल गीता का ही पूरा-पूरा अध्ययन कर लेना पर्याप्त है, शेष शास्त्रों का अध्ययन करने से क्या लाभ? निश्चित ही यह एकान्तिक सत्य है।

अतएव जिन लोगों को सनातनधर्म और नीतिशास्त्र के मूल तत्त्वों से परिचय कर लेना हो, वे सर्वप्रथम इस अपूर्व ग्रन्थ का मनोयोग पूर्वक अध्ययन करें, कारण यह है कि क्षर-अक्षर सृष्टि का और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान का विचार करनेवाले सांख्य, न्याय, मीमांसा, उपनिषद् और वेदान्त आदि प्राचीन महिमान्वित शास्त्र आविष्कृत होकर यथासंभव अपनी पूर्णावस्था प्राप्त कर चुकने पर, वैदिकधर्म को ज्ञानमूलक,

भक्तिप्रधान एवं कर्मयोग प्रधान जो अन्तिमरूप प्राप्त हुआ तथा वर्तमानकाल में प्रचलित वैदिक धर्म का जो मूल है, वही गीता में प्रतिपादित होने के कारण, हम कह सकते हैं कि, संक्षेप में ही सही, किन्तु निस्सन्दिग्ध रीति से सनातन धर्म के तत्त्वों को समझा देनेवाला या वेदान्त के गहन तत्त्वज्ञान के आधार पर 'कार्याकार्यव्यवस्थिति" करनेवाला गीता के समतुल्य दूसरा ग्रन्थ ही संस्कृत वाङ्मय में नहीं है। गीतारहस्यकार लोकमान्य पं. बालगङ्गाधर तिलक ने यथार्थ कहा है कि- "श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्मग्रन्थों का एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिण्ड-ब्राह्मण्ड- -ज्ञानसहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्त्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति से समझा देनावाला, उन्हीं तत्त्वों के आधार पर मनुष्य मात्र के पुरुषार्थ की, अर्थात् आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देनेवाला, भक्ति और ज्ञान का मेल कराके, इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करादेनेवाला तथा इसके द्वारा संसार में त्रस्त मनुष्य को शान्ति देकर उसे निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगानेवाला गीता के समान बालबोध अर्थात् सहज ही अर्थबोधक ग्रन्थ, संस्कृत की कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में भी नहीं मिल सकता ।" निश्चित ही आत्मज्ञान के अनेक गूढ़-सिद्धान्तों को तथा ज्ञानयुक्त भक्तिरस को आत्मसात किये हुए इस प्रासादिक भाषा के ग्रन्थ की, जिसने श्रीकृष्ण भगवान् के मुखारविन्द से निःसृत समस्त वैदिकधर्म के सार को अपने में समाहित किया है, अतुल्य योग्यता का वर्णन कौन कर सकता है ? यह ग्रन्थ वैदिकधर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान आज करीब सवा पाँच हजार वर्षों से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो गया है, इसका कारण भी इस ग्रन्थ का महत्त्व ही है । इसीलिए गीताध्यान में इस स्मृतिकालीन ग्रन्थ का अलंकार युक्त, किन्तु यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया गया है-

सर्वोपनिषदो **गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।**

**पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।**

अर्थात् जितने उपनिषद् हैं, वे मानों गौएँ हैं, श्रीकृष्ण स्वयं दूध दुहनेवाले (ग्वाला) है, बुद्धिमान् अर्जुन भोक्ता बछडा (वत्स) है, और जो दूध दुहा गया है, वही मधुर गीतामृत है। तात्पर्य यह है कि- उपनिषदों का सारतत्त्व ही गीता है । गाय के दूध के समान गीता का ज्ञान मंगलमय है। गाय दूध तभी देती है, जब बछडा सम्मुख उपस्थित हो, यहाँ पार्थ ही बछडा है। उसके व्याज से ही गीता का उपदेश हुआ है। अनुपम ज्ञान की वर्षा हुई। उसी गीतामृतरूप दूध के भोक्ता, यथार्थ ज्ञानप्राप्त करने के इच्छुक और उत्कृट अभिलाषी सुधीजन हैं।

इस प्रकार इस दिव्य ग्रन्थ में समस्त उपनिषदों का सार समाहित हो जाने से इसे श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् कहा जाता है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो अध्याय समाप्तिदर्शक संकल्प है, उसमें "इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे" इत्यादि शब्द उल्लिखित हैं ।

यह संकल्प यद्यपि मूलग्रन्थ (महाभारत) में नहीं है, तथापि यह गीता की सभी प्रतियों में पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि गीता की किसी भी प्रकार की टीका हो जाने के पहले ही, जब महाभारत से गीता नित्यपाठ के लिए अलग निकाल ली गई, तभी उक्त संकल्प का प्रचार हुआ होगा।

भारत की सभी भाषाओं में इस अलौकिक ग्रन्थ के अनेक अनुवाद, टीकाएँ और विवेचन हो चुके हैं। परन्तु जब से पश्चिमी विद्वानों को संस्कृत भाषा का ज्ञान होने लगा, तब से ग्रीक, लेटिन, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि यूरोप की अनेक भाषाओं में भी इसके अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। तात्पर्य यह है कि इस समय यह अद्वितीय ग्रन्थ समस्त संसार में प्रसिद्ध है। दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के विख्यात प्रोफेसर डॉ. गेड्डीज मैक प्रेगर, कहते हैं कि पाश्चात्य जगत् में भारतीय साहित्य का कोई भी ग्रन्थ इतना अधिक उद्धृत नहीं किया, जितना कि भगवद्गीता, क्योंकि यह सर्वाधिक लोकप्रिय है। जाता, पश्चिमीविद्वान् कहते हैं कि कर्म-अकर्म-विवेक अथवा नीतिशास्त्र पर पहला नियमबद्ध ग्रन्थ यूनानीतत्त्ववेत्ता अरिस्टॉटल ने लिखा है। परन्तु हमारा मत है कि अरिस्टॉटल के भी पहले, उनकी अपेक्षा अधिक व्यापक और तात्त्विक दृष्टि से, इन प्रश्नों का विचार महाभारत एवं गीता में हो चुका था तथा अध्यात्म-दृष्टि से गीता में जिस नीतितत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, उससे भिन्न कोई और नीतितत्त्व अब तक नहीं निकला है।

"संन्यासियों के समान रहकर तत्त्वज्ञान के विचार में शान्ति से आयु बिताना अच्छा है अथवा अनेक प्रकार की राजकीय उथल-पुथल करना उत्तम है" इस विषय का जो स्पष्टीकरण अरिस्टॉटल ने किया है, वह गीता में है, और सॉक्रेटीज के इस मत का भी गीता में एक प्रकार से समावेश हो गया है कि "मनुष्य जो कुछ पाप करता है, वह अज्ञान से ही करता है।" गीता का तो यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञान से बुद्धि के सम हो जाने पर, फिर मनुष्य से कोई भी पाप नहीं हो सकता। एविक्युरियन और स्टोइक पंथों के यूनानी पण्डितों का यह कथन भी गीता को ग्राह्य है कि पूर्ण अवस्था में पहुँचे हुए परमज्ञानी पुरुष का व्यवहार ही नीति-दृष्टि से सबके लिए आदर्श के समान प्रमाण है और इन पंथवालों ने परमज्ञानी पुरुष का जो वर्णन किया है, वह गीता के स्थितप्रज्ञ के वर्णन के समान ही है। इसी प्रकार मिल, स्पेन्सर, और कॉन्ट प्रभृति आधिभौतिकवादियों का यह जो कथन है कि नीति की पराकाष्ठा अथवा कसौटी यही है कि प्रत्येक मनुष्य को सम्पूर्ण मानवजाति के हितार्थ उद्योग करना चाहिए, उसका भी गीता में वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' के 'सर्वभूतहिते रतः ' इस बाह्य लक्षण में समावेश हो गया है एवं काँट और ग्रीन का, नीतिशास्त्र की उपपत्ति-विषयक तथा इच्छास्वातंत्र्य सम्बन्धी सिद्धान्त भी उपनिषदों के ज्ञान के आधार परगीता में आ गया है। इसकी अपेक्षा यदि गीता में और कुछ अधिकता न होती, तो भी वह सर्वमान्य हो गयी होती।

परन्तु गीता इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई, प्रत्युत उसने यह दिखा दिया कि मोक्ष, भक्ति और नीतिधर्म के आधिभौतिक ग्रन्थकारों को जिस विरोध का आभास होता है, वह विरोध यथार्थ नहीं है अथवा ज्ञान और कर्म में संन्यास-मार्गियों के मत से विरोध है, वह भी ठीक नहीं है और ब्रह्मविद्या का और भक्ति का जो मूल तत्त्व है, वही नीति का और सत्कर्म का भी आधार है एवं इस बात का भी निर्णय कर दिया है कि ज्ञान, संन्यास और भक्ति के समुचित सामंजस्य से, इस लोक में आयु व्यतीत करने के किस मार्ग को मनुष्य स्वीकार करे ? इस प्रकार गीता- ग्रन्थ प्रधानता से कर्मयोग का है और इसीलिए "ब्रह्मविद्यान्तर्गत (कर्म) योगशास्त्र" इस नाम से समस्त वैदिक ग्रन्थों में उसे अग्रस्थान प्राप्त हो गया है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि "गीता सुगीता कर्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः" यह क्यों कहा गया है ? भगवद्गीता जगत्प्रसिद्ध होने के अनन्तर अनेक गीताओं की रचना की गई। केवल इसलिए की गयी कि किसी विशिष्ट पंथ या विशिष्ट पुराण में भगवद्गीता के समान कोई गीता रहे बिना, उस पंथ या पुराण की पूर्णता नहीं हो सकती थी । इनमें कुछ गीताओं की रचना, महाभारत के शान्तिपर्वान्तर्गत फुटकर प्रकरणों के आधार पर की गयी है और कुछ पौराणिक आख्यानों के आधार पर तथा कुछ तो स्वतन्त्ररीति से रची गयी हैं। उदाहरणार्थ-

पिंगलगीता, शपांकगीता, बोध्यगीता, विचखन्युगीता, हारितगीता, पराशरगीता, वृत्रगीता, हंसगीता । ये सब शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षपर्व के कुछ फुटकर प्रकरणों के आधार पर रची गयी हैं। अश्वमेधपर्व की अनुगीता के एकभाग का विशेष नाम 'ब्राह्मणगीता' है। इनके अतिरिक्त अवधूतगीता, अष्टावक्रगीता, ईश्वरगीता,उत्तरगीता, कपिलगीता, गणेशगीता, देवीगीता, पाण्डवगीता, यमगीता, रामगीता, व्यासगीता, शिवगीता, सूर्यगीता इत्यादि अनेक गीताएँ प्रसिद्ध हैं । यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाए, तो इन सब गीताओं में भगवद्गीता की अपेक्षा कुछ अधिक विशेषता नहीं है और भगवद्गीता में अध्यात्मज्ञान और कर्म का मेल कर देने की जो अपूर्वशैली है, वह इनमें से किसी भी गीता में नहीं है। भगवद्गीता में पातंजलयोग अथवा हठयोग और कर्मत्याग रूप संन्यास का यथोचित वर्णन न देखकर, उसकी पूर्ति के लिए कृष्णार्जुन-संवाद के रूप में किसी ने 'उत्तरगीता' बाद में लिख दी है । अवधूत और अष्टावक्र आदि गीताएँ नितान्त एकदेशीय हैं, क्योंकि इनमें केवल संन्यासमार्ग का ही प्रतिपादन किया गया है। यमगीता और पाण्डवगीता तो केवल भक्ति-विषयक संक्षिप्त स्तोत्रों के समान हैं ।

शिवगीता, गणेशगीता और सूर्यगीता ऐसी नहीं हैं। यद्यपि इनमें ज्ञान और कर्म के समुच्चय का युक्तियुक्त समर्थन अवश्य किया गया है तथापि इनमें नवीनता कुछ भी नहीं है । क्योंकि यह विषय प्रायः भगवद्गीता से ही लिया गया है । इन कारणों से भगवद्गीता के प्रगल्भ तथा व्यापक तेज के सामने बाद की रचित कोई भी पौराणिक गीता नहीं ठहर सकी और इन गीताओं से विपरीत भगवद्गीता का ही महत्त्व अधिक

बढ गया है। यही कारण है कि 'भगवद्गीता' का 'गीता' नाम प्रचलित हो गया। अनेक गीताओं के होने पर भी भगवद्गीता की श्रेष्ठता निर्विवाद सिद्ध है। इसीकारण उत्तरकालीन वैदिकधर्मीय पण्डितों ने अन्य गीताओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया है।

सनातन आर्यधर्म का तत्त्वज्ञान, विश्व के अन्य किसी भी तत्त्वज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ है। धर्म और व्यवहार की परस्पर संगति जिस प्रकार आर्यधर्म में सोपपत्तिक प्रतिपादित है वैसी किसी भी धर्म में नहीं है। 'तत्त्वज्ञानमूलक धर्म और धर्ममूलक व्यवहार' इस विषय पर भगवद्गीता सदृश सयुक्तिक और सुबोध ग्रंथ संस्कृत वाङ्मय में दूसरा नहीं है। इसीलिए पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'प्रस्थानत्रयी' में गीता का समावेश कर योग्यता की दृष्टि से वेद के समतुल्य निर्धारित की है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता इन तीनों को 'प्रस्थानत्रयी' की संज्ञा से जाना जाता। इन तीनों में भी वेदान्तमूलक कर्माकर्म के विचार से अर्थात् नीतिशास्त्र की दृष्टि से भगवद्गीता का महत्त्व शेष दो ग्रंथों की अपेक्षा अधिक है। क्योंकि दर्शन विचारों का प्रतिपादन है और इन्हीं विचारों के अनुसार आचारों की व्यवस्था करना धर्म का कार्य है। दर्शन सिद्धान्त का प्रतिपादक है, तो धर्म, व्यवहार का प्रदर्शक है। बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की स्थिति निष्फल है और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है। इससे भी आर्यधर्म का आत्मतत्त्व साम्यवाद के सांगोपांग रहस्य का प्रतिपादन करनेवाला तथा मानव मात्र में एकत्व की, अद्वैत की भावना को जगानेवाला भगवद्गीता ही अद्वितीय ग्रन्थ है, यहकहने में कोई प्रत्यवाय नहीं होना चाहिए। अतः प्रचलित लोक शिक्षण संस्थाओं में इस ग्रन्थ का अध्यापन सुचारुरूप से चलाना नितान्त आवश्यक है। किन्तु 'तत्वज्ञान निवृत्तिपरक अर्थात् संन्यास परक ही है' यह धारणा आद्य शंकराचार्य के भाष्य से प्रसूत होने से, उत्तरकालीन सभी टीकाकारों की भी यही धारणा रही है कि 'वेदान्त का व्यावहारिक नीति से कोई सम्बन्ध नहीं है'। संस्कृत तथा अन्य भाषा के वेदान्तपरक अर्वाचीन ग्रंथ भी उक्त धारणा से ही ग्रस्त प्रतीत होते हैं। किन्तु भगवद्गीता विषयक उक्त विचार निश्चित ही निर्मूलक ही हैं। इतना ही नहीं, भगवद्गीता नैतिक व्यवहार के लिए वेदान्त की नितान्त आवश्यकता को प्रदर्शित करनेवाला तथा व्यक्ति तथा राष्ट्र के अभ्युदयार्थ नितान्त आवश्यक समझे जानेवाले धैर्य, उत्साह, स्वार्थत्याग, कर्तव्यनिष्ठा इत्यादि सभी बौद्धिक सद्गुणों का विकास करनेवाला यह ग्रंथ निवृत्तिमार्ग की भावना को जगानेवाला न होकर कर्म में प्रवृत्त करनेवाला ग्रंथ है। किन्तु इस तत्त्व को न जाननेवाले लोग, जिन्होंने गीता का केवल नाम ही सुना है, प्राय: कह देते हैं कि गीता केवल संन्यासियों के लिये ही है। वे अपने बच्चों को इसी भय-भावना से गीता का अभ्यास नहीं कराते। वस्तुतः वस्तुस्थिति उनके भयग्रस्त भावना से एकदम विपरीत है। गीता कर्मयोगशास्त्र होने के कारण उसमें 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं' जैसे अनेक विधिवाक्यों का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिलता है। गीता को

यदि संन्यास धर्म का प्रतिपादन करना होता तो, कम से कम किसी एक स्थान पर तो 'त्यज कर्म च तस्मात्त्वं' जैसा वाक्य प्रयुक्त होता, जब कि 'सततं कार्यं कर्म समाचर' जैसे वाक्य देखने को मिलते हैं। अतः उन व्यक्तियों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि मोह के कारण क्षात्र-धर्म से विमुख होकर भिक्षान्न से निर्वाह करने के लिये तत्पर अर्जुन ने जिस परम रहस्यमय गीता के उपदेश से आजीवन गृहस्थाश्रम में रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया, उस गीताशास्त्र का विपरीत परिणाम कैसे हो सकता है। इस रहस्य का उद्घाटन विद्वन्मूर्धन्य लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने ग्रंथ 'गीतारहस्य' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ में सप्रमाण किया है। फलत:वेदान्त विषयक प्राचीन अयथार्थ धारणा बहुत कुछ दूर हुई है। सनातन तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में विगत दो सहस्त्र वर्षों से प्रचलित मत में गीतारहस्यकार ने इस उत्क्रान्ति को घटित कर कर्तव्यपराङ्मुख हुए हमारे राष्ट्र में फिर से कर्तव्य जागृति उत्पन्न की है। वस्तुतः राष्ट्र के भावी उदय का यह प्रसादचिह्न ही समझा जाना चाहिए।

### 3.3.1 भगवद्गीता का तात्पर्य

गीता का यथार्थ तात्पर्य जानने के लिये हमें उन पण्डितों और आचार्यों के ग्रन्थों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिन्होंने गीतासागर का मंथन किया है। इन पण्डितों में महाभारत के कर्ता (अर्थात् व्यास) ही अग्रगण्य हैं। आजकल जो गीता प्रसिद्ध है, उसके ये ही (व्यास ही) एक प्रकार से कर्ता भी कहे जा सकते हैं। इसलिए सर्वप्रथम उन्हीं के मतानुसार संक्षेप में गीता का तात्पर्य देखते हैं-

महाभारत के शान्तिपर्व में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि गीताधर्म और भागवतधर्म दोनों एक ही हैं क्योंकि नारायणीय या भागवतधर्म के निरूपण में वैशंपायन ने जनमेजय से कहा है कि यही भागवतधर्म संक्षिप्त रीति से हरिगीता अर्थात् भगवद्गीता में पहले ही बताया गया है (म.भा.शां. ३४६।१०)। आगे यह भी कहा गया है कि कौरव-पाण्डव युद्ध के समय जब अर्जुन उद्विग्न हो गया था, तब स्वयं भगवान् ने यह उपदेश (गीता४।१) अर्जुन को दिया था। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जिस भागवतधर्म के विषय में दो बार कहा गया है, वही वस्तुतः गीता का प्रतिपाद्य विषय है। उसी को 'सात्वत' या 'एकान्तिक' धर्म भी कहा गया है। इसका विवेचन करते समय (शां. ३४७।८०-८१) दो लक्षण दिये गये हैं-

नारायणापरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः॥

अर्थात् यह नारायणीय धर्म प्रवृत्तिमार्ग का होकर भी पुनर्जन्म को टालनेवाला है अर्थात् पूर्णमोक्ष का दाता है। यहाँ प्रवृत्ति का अर्थ है कर्मसंन्यास न लेकर मरण पर्यन्त चातुर्वर्ण्यविहित निष्काम कर्म करना।

अतः यह स्पष्ट है कि गीता में जो उपदेश अर्जुन को किया गया है, वह भागवतधर्म का ही है और उसको महाभारतकार प्रवृत्तिविषयक ही मानते हैं, क्योंकि उपर्युक्त धर्म भी प्रवृत्तिविषयक ही है।

सारांश यह है कि महाभारत में उल्लिखित वचनों (भ.भा. ३४८।५३) का यही अभिप्राय है कि गीता में अर्जुन को जो उपदेश किया था, वह विशेषकर मनु-इक्ष्वाकु इत्यादि परम्परा से चले आये प्रवृत्तिविषयक भागवतधर्म का ही है और उसमें निवृत्तिविषयक यतिधर्म का जो निरूपण पाया जाता है, वह केवल आनुषंगिक है। इसके अतिरिक्त भागवत की पृथु, प्रियव्रत और प्रह्लाद आदि भक्तों की कथाओं से तथा भागवत में दिये गये निष्काम वर्णनों से (भागवत ४.२२, ५१, ५२, ७।१०, २३ और ११।४६) ज्ञात हो जाता है कि महाभारत का प्रवृत्तिविषयक नारायणीय धर्म और भागवतपुराण का भागवतधर्म, ये दोनों मूलतः एक ही हैं, परन्तु भागवतपुराण का मुख्य उद्देश्य यह नहीं है कि वह भागवतधर्म के कर्मयुक्त प्रवृत्तितत्त्व का समर्थन करे। यह समर्थन महाभारत में और विशेषकर गीता में किया गया है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं महाभारत के अनुसार गीता का क्या तात्पर्य है और इसीलिए गीता में 'कर्मण्यकर्म यः पश्यत्' (४।१८) की अपेक्षा 'अकर्मणि च कर्म यः पर अधिक बल दिया गया है और जहाँ तहाँ "सर्वथा वर्तमानोऽपि कर्मभिर्न स बध्यते" इत्याकारक आश्वासन देकर कर्मयोग की प्रवृत्ति को जाग्रत कर, उसे उद्दीप्त किया है। अब यहाँ यह सोचना चाहिये कि गीता को यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों में से केवल निवृत्ति का ही उपदेश देना होता तो, उसने देवासुर संपत्ति के वर्णन में 'आसुरी लोग केवल प्रवृत्ति के ही पीछे लगे रहते हैं' ऐसा स्पष्ट कहा होता, किन्तु ऐसा न कहकर, यह कहा है कि उन्हें किस कार्य के प्रति प्रवृत्ति और किस कार्य के प्रति निवृत्ति होनी चाहिए' यह नहीं समझता, अर्थात् गीता को कुछ कार्यों के प्रति रहनेवाली प्रवृत्ति के बराबर निवृत्ति भी उतनी ही इष्ट प्रतीत होती है। कर्मयोगी को अनासक्त बुद्धि से कर्माचरण करने पर सम्यक् सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है-

इस विषय में गीता में- 'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः' (३।२०) 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' (१८।४५) "असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्यासेनाधिगच्छति" (१८।४९) 'कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥" (२।५१)। 'तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार'। असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥ "(३।१९) "सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥" (१८१५६) 'त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः' (१८।१०) 'हत्वापि स इमाँल्लोकान्नहन्ति न निबध्यते॥' (१८।१७)

उक्त वचनों में कर्मयोगी को कर्मसंन्यास न करने पर भी मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा बार-बार कहा है। उक्त

किसी भी वचन में स्वरूपतः संन्यास का किंचिद् भी संबन्ध नहीं आता। अपितु इसके विपरीत, प्रत्येक स्थल पर कहा है कि कर्म करते हुए ही अथवा कर्म का संपादन करने पर ही मोक्ष प्राप्ति होती है। उक्त वचनों में संन्यास का यदि कहीं सम्बन्ध हो तो संन्यासमार्गी आकर निर्देशित करें।

वास्तव में गीता कर्मयोग का शास्त्र होने से उसमें 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं' (४।१५) जैसे अनेक विधिवाक्यों का यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है। यदि गीता को संन्यासधर्म का प्रतिपादन करना होता तो, कम से कम किसी एक स्थल पर ही, 'त्यज कर्म च तस्मात्त्वं' इत्याकारक वाक्य प्रयोग किया गया होता। किन्तु संपूर्ण गीता में ऐसा एक भी वाक्य परिलक्षित नहीं होता। तो फिर क्या अनुमान करना चाहिए ? 'त्यज कर्म च तस्मात्त्वं' ऐसीदृढता से कहनेवाला एक भी वाक्य ढूँढने से भी नहीं मिलता, बल्कि 'कार्यं कर्म समाचर' जैसे अनेक वाक्य यत्र-तत्र (स्थान-स्थान पर) प्रयुक्त होने से, गीता में कर्मयोग का प्रतिपादन न किया जाकर कर्मत्याग का ही प्रतिपादन किया गया है, इस प्रकार यदि कोई मानता है तो उसके तर्कशास्त्र को दूर से ही नमस्कार करना ही योग्य है।

कर्मयोग की जितने प्रकार से प्रशंसा की जा सकती है, उतनी कर, कर्मयोग का आचरण करने के विषय में जितने प्रकारों का उल्लेख किया जा सकता है, उन सब प्रकारों को गीता में कर्माचरण करने के लिये कहा गया है।

उसी प्रकार कर्माचरण का त्याग करने से होनेवाले दोषों का भी वर्णन गीता में किया गया है। यह निम्नांकित उल्लेखों से सहज ज्ञात हो सकता है। गीता के इस विधान का वर्गीकरण करने पर वह इस प्रकार दिखाई देगा-

(१) कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है। (५-२), (३-७), (६-४६), (३-८)।

(२) कर्मत्याग अशक्य है। (३-५), (३-३३), (१८-५९), (१८-६०), (१८-११),(0/10)

(३) नियत कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये। (१८-४८)।

(४) यज्ञादि कर्म का त्याग करने पर 'अघायुत्व' दोष प्राप्त होता है। (३-१६), (३-१२)।

(५) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा कर्म का त्याग किया जाने पर अज्ञ लोगों में बुद्धिभेद उत्पन्न होता है और वर्णसंकरादि की आपत्ति आती है। (३-२१-२९)।

(६) कर्मों का त्याग करने से मिथ्याचार की प्रवृत्ति होती है। (३-६)।

(७) कर्म न करने से नैष्कर्म्य की सिद्धि होती ही है, यह कोई आवश्यक नहीं है। (३-४) क्योंकि अनेकदा अकर्म में भी कर्म होता है। (४-१८)।

(८) कर्माचरण से लोकसंग्रह साध्य होता है। (३-२१)।

(९) कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग सुलभ है। (५-६)।

इतने अलग-अलग प्रकारों से कर्मयोग की आवश्यकता और श्रेष्ठता और कर्मत्याग की असंभवनीयता और सदोषता का उल्लेख गीता में होने पर भी, उसकी ओर दुर्लक्ष्य कर संन्यासमार्गियों ने गीता को संन्यासपरक बना दिया है, यह एक महादाश्चर्य ही है। यदि भगवान् को गीता में कर्मत्याग ही कहना होता तो, वैसा उल्लेख करने में उन्हें क्या आपत्ति होती, किन्तु वैसा निर्देश करने का प्रसंग आने पर, उसका उल्लेख टालकर (अर्थात् न कर) कर्मत्याग करने की अपेक्षा कर्म में निहित आसक्ति का त्याग करना चाहिये, इत्याकारक उपदेश अनेकत्र किया गया है।

उदाहरणार्थ- अध्याय १५वाँ देखें। यह अध्याय संपूर्ण गीता का सारभूत अध्याय है। उसमें संसारवृक्ष का काव्यमय वर्णन है किन्तु उसमें भी उस वृक्ष का छेदन 'अकर्मशस्त्र' से करने के लिये न कहकर 'असंगशस्त्र' से करने के लिये कहा गया है। प्रकृत अध्याय में आगे 'निर्मानमोहा जितसंगदोषाः' (१५-३, ५) इस वाक्य में भी कर्मसंन्यास करनेवालों का वर्णन न होकर 'जितसंगदोषाः' कर्मयोगियों का ही वर्णन है और ऐसे कर्मयोगी मोक्ष को प्राप्त होते हैं, स्पष्ट कहा गया है। कर्मत्याग करनेवालों को विष्णुपुराण में कहा गया है-

अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः। ते हरेद्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्हरेः॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेदान्तशास्त्र की तरह केवल ब्रह्मज्ञान का उपदेश करना और तत् सम्बन्धित भिन्न-भिन्न मतों का परामर्श लेकर द्वैत अथवा अद्वैत मत को प्रस्थापित करना ही भगवद्गीता का प्रधान विषय नहीं है। सम्मुख उपस्थित दारुण प्रसंग के कारण भ्रमित-किंकर्तव्यविमूढ और शिथिल गात्रों के अर्जुन को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराकर और वह कर्तव्य-कर्म ही मोक्ष का साधन किस प्रकार है, इसका विशद विवेचन करना और अर्जुन के मोह को दूरकर उसके मन में पुनः युद्धविषयक उत्साह उत्पन्न करना अर्थात् अपने कर्तव्य कर्म के प्रति उसे तत्पर कराना ही गीता का उद्देश्य है, न कि कर्तव्य कर्म का त्याग कराकर भिक्षा-वृत्ति से अपनी जीवनयात्रा चलाने के लिये उसे उत्साहित करना। फिर भी (अर्थात् गीता का उद्देश्य स्पष्ट ज्ञात होने पर भी) अब देखना है कि गीता के भाष्यकारों और गीता के टीकाकारों ने गीता का क्या तात्पर्य निश्चित किया है।

महाभारत के रचनाकाल से शंकराचार्य के समय तक गीता का अर्थ किस प्रकार किया जाता था, तथापि शांकरभाष्य में ही इन प्राचीन टीकाओं के मतों का जो उल्लेख है (गीता शां.भा.अ. २, और तीन का उपोद्घात) उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शंकराचार्य के पूर्वकालीन टीकाकार गीता का अर्थ महाभारत के कर्ता के अनुसार ही ज्ञानकर्मसमुच्चयात्मक किया करते थे, किं बहुना प्रवृत्ति-विषयक अर्थ किया जाता था। अर्थात् ज्ञानी मनुष्य को ज्ञान के साथ-साथ मृत्युपर्यन्त स्वधर्मविहित कर्म करना चाहिए। परन्तु वैदिक कर्मयोग का सिद्धान्त शंकराचार्य को मान्य नहीं था। इसीलिए उसका खण्डन

करने और अपने मत के अनुसार गीता का तात्पर्य बनाने के लिए ही उन्होंने गीताभाष्य की रचना की है।

**3.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में नैतिक मूल्य –**

**निज धर्म का पालन –**

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।**

**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।**(गीता, अध्याय-2, श्लोक 31)

श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को निज धर्म (क्षत्रिय धर्म) पालन के लिए प्रेरित करना और कहना कि निज धर्म पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं होता।

यहाँ हम सब को यही ध्यान देना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य का जो निज धर्म है उसका पालन करना नितान्त आवश्यक है।

**निज धर्म का पालन नहीं करने से अपकीर्ति –**

**अथ चेत्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।**

**तत: स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।**

**अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।**

**सम्भावितस्य चाकीर्ति र्मरणादतिरिच्यते।।**(गीता, अध्याय-2, श्लोक 33,34)

निज धर्मयुद्ध को नहीं करने से स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप का भागी बनेगा। तथा सब लोग अनन्त काल तक तेरी अपकीर्ति का बखान करते रहेंगे और माननीय पुरुष के लिए अपकीर्ति मरण से भी बढ़कर होता है। इसलिए निज धर्म का पालन अवश्य करना चाहिये।

**एकसमान होकर कार्य करना –**

**सुखदु:खसमे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**

**ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।**(गीता, अध्याय-2, श्लोक 38)

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दु:ख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, इस प्रकार से युद्ध करने से तू पाप का भागी नहीं बनेगा। ऐसा भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते है।

**फल की चिन्ता किए बिना कर्म करना –**

**कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोत्स्त्वकर्मणि।।**(गीता, अध्याय-2, श्लोक 47)

अर्थात् तेरा कर्म करने में अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मो के फल का हेतु मत हो तथ तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। प्रत्येक मनुष्य को फल की चिन्ता किए बिना हि निज कर्म को करना चाहिये क्योंकि यही उसके वश में है।

**योग ज्ञान** –

**योगस्थ: कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।**
**सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।**

अर्जुन के लिए भगवान कहते है कि तू आसक्ति का त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर। समत्व ही 'योग' कहलाता है।

**स्थिर बुद्धि** –

**दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।**
**वीतरागभयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।**

दु:खों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा नि:स्पृह है तथा जिसके राग, भय, क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि वाला कहा जाता है।

विचारणीय तथ्य -

**क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम:।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।**

क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है। उससे स्मृति में भ्रम हो जाता है जिससे बुद्धि का नाश हो जाता है। और बुद्धि के नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। अत: इन सबका ध्यान रखते हुए कार्य करना चाहिये।

**राग-द्वेष से रहित होकर कार्य करना** –

**इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।**
**तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।**

इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए स्थित है। मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये। क्यों कि वे दोनों ही इसके कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले महान शत्रु है।

**स्वधर्म की श्रेष्ठता –**

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**

**स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।।**

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला होता है।

ज्ञान की महिमा –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्ध: कालेनात्मनि विन्दति।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला नि:सन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्म योग के द्वारा शुद्धान्तकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा को प्राप्त कर लेता है।

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है तथा ज्ञान को प्राप्त करके वह बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवद प्राप्ति कर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

**काम, क्रोध तथा लोभ का त्याग –**

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन:।**

**काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत्।।**

**काम, क्रोध तथा लोभ – ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति ले जाने वाले हैं। अत: इनका त्याग कर देना चाहिये।**

**शास्त्रीय एवं अशास्त्रीय आचरण –**

**य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।**

**न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।**

जो पुरूष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी ईच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्ध को प्राप्त होता है। न परम गति को और न सुख को।

**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**

**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।**

कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर प्राणिमात्र को शास्त्रविधि से नियत कर्म को करना चाहिये। यही नैतिकता है।

## बोध प्रश्न

1. श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यायों की संख्या कितनी है?

   क. 15 ख. 16 ग. 17 घ. 18

2. भगवद्गीता किसके द्वारा गायी गयी है।

   क. अर्जुन ख. कृष्ण ग. संजय घ. धृतराष्ट्र

3. समस्त उपनिषदों का गाय किसे कहा गया है।

   क. रामायण ख. गीता ग. महाभारत घ. विदुरनीति

4. गीता में सांख्य योग नामक अध्याय कौन सा है।

   क. 1 ख. 2 ग. 3 घ. 4

5. गीता में समत्व को क्या कहा गया है।

   क. ज्ञान ख. योग ग. भक्ति घ. मोक्ष

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

6. गीता गंगोदकं पीत्वा ..... न विद्यते।
7. सर्वोपनिषदो गावो ..... गोपाल नन्दन:।
8. अकीर्ति चापि ..... कथयिष्यन्ति तेव्ययाम्।
9. सुखदु:खसमे कृत्वा लाभालाभौ .....।
10. ..... लभते ज्ञानम् ।

## 3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जान लिया है कि श्रीमद्भगवद्गीता देश-काल से परे वैश्विकसंघटना का ग्रन्थ है और गीता की विचारसम्पदा वैश्विक मानव के जीवनपथ का पाथेय है। आज के युग में प्रचलित सम्प्रदायवाद और धर्मनिरपेक्षतावाद की संकीर्ण मानसिकता को अस्तित्व विहीन करता भगवद्गीता का वैचारिक आन्दोलन मानवीय ऊर्जा को सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर करते हुए मानव को मानव बनने में जीवनाधायक तथा वैश्विक मानवीय मूल्याधारित मानवसभ्यता को

विकसित करनेवाला महान् प्रकाशस्तम्भ है।

भगवान् की दिव्यवाणी को समाहित की हुई जगत् प्रसिद्ध भगवद्गीता के विषय में या उसका परिचय कराना, सूर्य को दीपक से दिखलाने का एक बचकाना प्रयत्न है। यह दिव्य ग्रन्थ स्वयं ही अपनी तेजस्विता से प्रकाशमान होने के कारण अपना परिचय दे देता है ।

मानव मात्र के लिए यह जिज्ञासा का प्रश्न है कि जो गीता अपने स्वजनों के साथ युद्ध करने को बड़ा भारी कुकर्म समझकर खिन्न होनेवाले अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये बताई गई है। उस गीता में ब्रह्मज्ञान से या भक्ति से मोक्ष प्राप्त करने की विधि का या मोक्षमार्ग का विवेचन क्यों किया गया है? यह शंका इसलिए और भी दृढ होती है कि गीता की किसी भी टीका में इस शंका का योग्य उत्तर दूँढने से भी नहीं मिलता है। किन्तु पं. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कृत श्रीभगवद्गीतारहस्य नामक ग्रन्थ का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मूलत: गीता निवृत्तिप्रधान नहीं है, वह तो कर्म प्रधान है और अधिक क्या कहें, गीता में अकेला 'योग' शब्द ही 'कर्मयोग' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तत्पश्चात् महाभारत, वेदान्तसूत्र, उपनिषद् और वेदान्तशास्त्र-विषयक अन्यान्य संस्कृत तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से भी वही, गीतारहस्य ग्रन्थोक्त-मत दृढ होने पर समझा जा सकता है कि गीता का प्रतिपाद्यविषय प्रवृत्तिप्रधान है।

## 3.5 पारिभाषिक शब्दावली

भूतानि - जीवात्मा

संशय – सन्देह

स्मृति - चेतना

दोग्धा – दूहने वाला

गोपालनन्दन: – श्रीकृष्ण

गावो – गाय

पार्थ – अर्जुन

धनजंय – अर्जुन

महाबाहो – अर्जुन

ह्रीषीकेश – कृष्ण

गीतामृतं – गीता रूपी अमृत

हतो – मारा जाना

## 3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ख
3. ख
4. ख
5. ख
6. पुनर्जन्म
7. दोग्धा
8. भूतानि
9. जयाजयौ
10. श्रद्धावॉन

## 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भगवद्गीता – गीता प्रेस

भगवद्गीता संजीवनी – गीता प्रेस

भगवद्गीता – शांकर एवं रामानुज भाष्य

श्रीमद्भगवद्गीता – केशवराव मुसलगॉवकर

## 3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भगवद्गीता का विस्तृत वर्णन करें।
2. श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा का विश्लेषण करें।
3. श्रीमद्भगद्गीता के अनुसार नैतिक शिक्षा का वर्णन कीजिये।
4. भगवद्गीता का तात्पर्य का प्रतिपादन कीजिये।
5. श्रीमद्भगवद्गीता पर निबन्ध लिखिये।

# इकाई – 4 श्रीरामचरितमानस के अनुसार नैतिक मूल्यांकन

**इकाई की संरचना**

४.१ प्रस्तावना

४.२ उद्देश्य

४.३ नैतिकता के मूल आधार- मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

४.३.१ रामचरितमानस की रचना

४.३.२ श्रीराम जी का आदर्श

४.३.३ माता-पिता की आज्ञा पालन एवं उनको सर्वोच्च स्थान देना

४.३.४ गुरु का आज्ञा पालन

४.३.५ भ्रातृ प्रेम

४.३.६ राजा: प्रजा का सेवक

४.३.७ मर्यादा की पराकाष्ठा

४.३.८ पर्यावरण सुरक्षा एवं प्रकृति प्रेम

४.३.९ वचनबद्धता

४.३.१० आस्था की पराकाष्ठा

४.४ सारांश

४.५ शब्दावली

४.६बोध प्रश्नों के उत्तर

४.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

४.८ सहायक ग्रन्थ सूची

४.९ निबन्धात्मक प्रश्न

## ४.१ प्रस्तावना

प्रिय अध्येता! द्वितीय खंड की चतुर्थ इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई में आप रामचरितमानस में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा के कुछ सन्दर्भों का अध्ययन करेंगे। वस्तुत: सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय नैतिक शिक्षा से भरा पड़ा है। इससे पूर्व की इकाई में आपने भगवद्गीता में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों को समझ लिया है। अब आप भारतीय सनातन परम्परा एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने वाली असाधारण और अमूल्य ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस का अध्ययन करने जा रहे हैं।

मानस के सन्दर्भ में आचार्यों का कथन है कि 'यन्नमानसे तन्नमानसे' अर्थात् जो मानस में नहीं है वह मनुष्य के मानस में भी नहीं है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के चरित्र का वर्णन रूपी ग्रन्थ है – श्रीरामचरितमानस। इस ग्रन्थ में पग-पग पर नैतिकता की बात की गयी है।

आइए हम सब इस इकाई में मानस के अनुसार नैतिक मूल्यों की मीमांसा का अध्ययन प्राप्त करते हैं।

## ४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के गुणों के आधार पर नैतिकता का स्वरूप निरूपित कर सकेंगे।

- ❖ नैतिक-शिक्षा के आलोक में मानवीय-गुणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ नैतिक-शिक्षा के आधारभूत गुणों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ❖ रामचरितमानस में निरूपित नैतिक-शिक्षा का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ नैतिक-शिक्षा के अध्ययन में रामचरितमानस के अवदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## ४.३ नैतिकता के मूल आधार-मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

श्रीरामचरितमानस कविकुलगुरु गोस्वामी तुलसीदास जी की कालजयी रचना है। उनके आराध्य प्रभु श्रीराम मर्यादा की पराकाष्ठा है अथवा जिनसे सारी मर्यादायें उत्पन्न होती है वह है - श्रीराम। श्रीरामचरितमानस भारतीय सनातन परम्परा एवं संस्कृति की संवाहिका ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति का प्राण बसा हुआ है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में यदि नैतिकता एवं मर्यादा का कोई स्रोत है तो वह है श्रीरामचरितमानस और उसके नायक – श्रीरामचन्द्र जी।

यद्यपि रामायण में अनेकों स्थलों पर सदाचार का निरूपण हुआ है, तथापि श्रीराम का आचार सभी सदाचारों की शिरोमणि, सन्मार्गों में प्रधान, लौकिक व्यवहारों की कसौटी तथा धर्म और मर्यादा

का निष्कृष्ट पुटपाक है। उनके आचरण के विषय में अयोध्याकाण्ड में कहा गया है –

**स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।**
**उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ।।**
**बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।**
**वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ।।**

अर्थात् श्रीराम शान्तचित्त रहने वाले थे वे किसी से बात करते समय आरम्भ में ही अत्यन्त मृदुता से बात करते थे। यदि कोई उनसे रूखेपन या कड़ाई से बात भी करे तो भी वे उसका प्रत्युत्तर नहीं देते थे। वे बुद्धिमान्, मधुरभाषी और बलवान् होने पर भी अपने बल या गुणों को लेकर अभिमानी नहीं थे।

रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में भी लिखा है कि –

करुनामय मदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ।

अर्थात् भगवान श्रीराम का स्वभाव करुणा से युक्त और कोमल है।

### ४.३.१ रामचरितमानस की रचना -

रामचरितमानस की रचना कविकुलशिरोमणि भक्तहृदय तुलसीदास जी के द्वारा की गयी है। इसलिए उनकी रचनाओं में एक भक्त की झलक देखने को मिलती है जबकि बाल्मीकी रामायण के प्रणेता स्वयं ब्रह्मा जी के पुत्र है और उनसे प्रेरित होकर महाकाव्य रामायण की रचना करते है। बाल्मीकी जी को यह वरदान भी प्राप्त है कि वो जो लिख देंगे वही हो जायेगा। इसलिए रामचरितमानस और रामायण के भाव में थोड़ा बहुत अन्तर दिखलायी पड़ता है। कतिपय सुधीजनों का मानना है कि भगवान श्रीराम ने ही कराल कलिकाल के कुमतिकरवाल से विलुलित मानवीय मूल्यों से अपरिचित मानवजाति को वैदिकमार्ग पर प्रतिष्ठिति करने के लिए महर्षि बाल्मीकी को एक ही साथ सम्पूर्ण सनातन वैदिक भारतीय वांगमय का भाष्य करने हेतु कविताभामिनीविलास गोस्वामी तुलसीदास के रूप में अपनी त्रिकालाबाधित वांगमयप्रतिभा प्रत्युत्पन्न संवितशक्ति के साथ भारतवसुन्धरा पर अवतरित किया।

रामचरितमानस ग्रंथ की रचना गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण को हिंदी भाषान्तर कर अवधी भाषा में चौपाई व् दोहो से सुसज्जित करके किया है। इस ग्रन्थ के नैतिक सिद्धांतो द्वारा वर्तमान मानव मात्र को तनाव, राग, ईर्ष्या, द्वेष तथा सांसारिक बंधनो से उबारा जा सकता है। वर्षों पूर्व लिखी गयी रामचरितमानस में एक-एक बात नास्तिकता से आस्तिकता की ओर, असत् से सत् की ओर अंधकार

को प्रकाश की ओर लेकर जाने हेतु प्रेरित करती है। आज के विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस धरा पर सजीव व निर्जीव जो भी जंतु या वस्तु आच्छादित है –

**''सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनज मोहि भाए॥''** (उत्तरकाण्ड 85/04)

अर्थात, सम्पूर्ण प्रकृति के जीव मेरे द्वारा ही उत्पन्न है मनुष्य उन सभी जीवों में ज्येष्ठ व सर्वश्रेष्ठ होने के नाते मनुष्य मुझे अधिक प्रिय है। रामचरितमानस में सात काण्ड है, जो श्री राम भगवान की ओर बढ़ने के मार्ग को भी दर्शाते है, ऐसा भी माना जाता है और लोगो में आस्था है कि स्वयं श्री भोले शंकर जी ने भगवान राम की तरफ उन्मुख होने के लिये स्वयं श्री रामचरितमानस की रचना की थी।

**४.३.२ श्रीराम जी का आदर्श -**

**"प्रात:काल उठि के रघुनाथा मातु पिता गुरु नावहि माथा "** (बालकाण्ड 204/07)

अर्थात, प्रभु श्री राम जी प्रातः काल उठकर स्नानादि नित्य कर्मों से निवृत होकर सर्वप्रथम माता-पिता व गुरु को प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करते थे। इसे मानवमात्र के लिए नैतिक आदर्श बताकर श्रीराम जी ने पाथेय बनाया।

श्रीरामचरितमानस में भले रामकथा हो, किन्तु कवि का मूल उद्देश्य राम के चरित्र के माध्यम से नैतिकता एवं सदाचार की शिक्षा देना रहा है। श्रीरामचरितमानस भारतीय संस्कृति का वाहक महाकाव्य ही नहीं अपितु विश्वजनीन आचारशास्त्र का बोधक महान् ग्रन्थ भी है। यह मानव धर्म के सिद्धान्तों के प्रयोगात्मक पक्ष का आदर्श रूप प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। यह विभिन्न पुराण निगमागम सम्मत, लोकशास्त्र काव्यावेक्षणजन्य स्वानुभूति पुष्ट प्रातिभ चाक्षुष विषयीकृत जागतिक एवं पारमार्थिक तत्त्वों का सम्यक् निरूपण करता है। गोस्वामी जी ने स्वयं कहा है-

*नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्योऽपि*
*स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ भाषा निबंधमति मंजुलमातनोति ॥*

अर्थात यह ग्रन्थ नाना पुराण, निगमागम, रामायण तथा कुछ अन्य ग्रन्थों से लेकर रचा गया है और तुलसी ने अपने अन्तः सुख के लिए रघुनाथ की गाथा कही है।

सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म तथा आपद्धर्म के विभिन्न रूपों की अवतारणा इसकी विशेषता है। पितृधर्म, पुत्रधर्म, मातृधर्म, गुरुधर्म, शिष्यधर्म, भ्रातृधर्म, मित्रधर्म, पतिधर्म, पत्नीधर्म, शत्रुधर्म प्रभृति जागतिक सम्बन्धों के विश्लेषण के साथ ही साथ सेवक-सेव्य, पूजक-पूज्य, एवं आराधक-आर्राध्य के आचरणीय कर्तव्यों का सांगोपांग वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इसीलिए स्त्री-पुरुष आवृद्ध-बाल-युवा निर्धन, धनी, शिक्षित, अशिक्षित, गृहस्थ, संन्यासी सभी इस ग्रन्थ रत्न का आदरपूर्वक परायण करते हैं।

देखिए-

*सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥*
*जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥*

इसी प्रकार, राजधर्म पर कहते हैं-

*सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।*
*राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥*

वस्तुतः श्रीरामचरितमानस में भक्ति, साहित्य, दर्शन सब कुछ है। तुलसीदास की लोकप्रियता का कारण यह है कि उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा और व्यापक चित्रण किया है।

श्रीरामचरितमानस तुलसीदासजी का सुदृढ़ कीर्ति स्तम्भ है जिसके कारण वे संसार में श्रेष्ठ कवि के रूप में जाने जाते हैं। मानस का कथाशिल्प, काव्यरूप, अलंकार संयोजना, छंद नियोजना और उसका प्रयोगात्मक सौंदर्य, लोक-संस्कृति तथा जीवन-मूल्यों का मनोवैज्ञानिक पक्ष अपने श्रेष्ठतम रूप में है। श्रीरामचरितमानस के परिचय के पश्चात अब बात करते हैं इसमें चित्रित भारतीय संस्कृति की। भारतीय संस्कृति का चित्रण जितना मानस में किया गया है शायद ही किसी और ग्रंथ में हो, क्योंकि इसमें श्रीराम जी के माध्यम से ,लक्ष्मण जी के माध्यम से और अन्य चरित्रों के माध्यम से हर चीज की चरम सीमा बताई गई है ।जैसे मर्यादा की चरम सीमा, भ्रातृ प्रेम की चरम सीमा, भक्ति की चरम सीमा इत्यादि। अब हम इसके बारे में विस्तार से बात करते हैं ।

### ४.३.३ माता पिता की आज्ञा का पालन एवं उनको सर्वोच्च स्थान

भगवान श्रीराम माता-पिता के परम आज्ञाकारी है। पिता के वचन को पूर्ण करने के लिए 14 वर्षों का वनवास ग्रहण करना उनकी असीम पितृभक्ति को दर्शाता है। हमारे वैदिक सनातन परम्परा में माता को देवताओं से भी सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। माता और पिता पृथ्वी और आकाश के समतुल्य माने जाते हैं और मानस में भी श्रीराम के माध्यम से माता और पिता की आज्ञा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। श्रीराम जी ने वनगमन को जिस प्रकार शिरोधार्य किया, वह उस युग में भी आदरणीय था और आज के युग में भी आदरणीय है, और आगे भी आदरणीय और अनुकरणीय भी रहेगा । कितने भी दुख, कितनी तकलीफ ही क्यों न हो माता - पिता की आज्ञा हमेशा नतमस्तक होकर माननी चाहिए। माता- पिता की आज्ञा का इस तरह पालन करने वाले श्री राम की तरह शायद ही कोई और चरित्र हमें देखने को मिलता है। इसके साथ-साथ मानस में लगभग सभी पात्र अपने माता-पिता एवं गुरुजनों का एवम अपने अग्रजों का कहना बहुत ही शालीनता के साथ मानते हैं। यही हिंदू धर्म की संस्कृति है। यही हमारी पहचान है जिसका निर्वाह श्रीरामचरितमानस में बखूबी किया गया है

४.३.४ गुरु का आज्ञा पालन

जिस प्रकार श्री राम जी और अन्य पात्रों ने भी माता- पिता की आज्ञा को अपना धर्म समझा। इसी प्रकार उन्होंने गुरु वशिष्ठ की आज्ञा को भी उतना ही सम्मान प्रदान किया। फिर चाहे वह राक्षसों का वध हो, शिव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का कार्य हो या फिर कोई और। उन्होंने हमेशा सिर झुका कर अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन किया। इसी प्रकार उनकी आज्ञा का पालन श्री राम जी के अन्य भाइयों ने भी किया है।

४.३.५ भ्रातृ प्रेम--

लक्ष्मण जी ने भ्रातृ प्रेम की चरम सीमा को छुआ है। उन्होंने अपना जीवन ,यहां तक कि प्राकृतिक क्रिया जैसे निद्रा का भी त्याग कर दिया था (वनवास के दौरान) ।यह सर्वविदित है कि लक्ष्मण जी वनवास की अवधि पूरे 14 वर्ष तक नहीं सोए थे। इसलिए उन्होंने अपनी शारीरिक क्रियाओं को , प्राकृतिक क्रियाओं को भी अपने भाई के लिए त्याग दिया। अपने गृहस्थ जीवन को,अपना सर्वस्व अपने भाई पर निछावर कर दिया। भ्रातृ प्रेम का इससे अधिक अच्छा उदाहरण देखने को मिल ही नहीं सकता। लक्ष्मण जी के त्याग को और भ्रातृ प्रेम को तो हर कोई जानता है परंतु भ्रातृ प्रेम की पराकाष्ठा तो देखने को मिलती है कुंभकरण में। जिन्होंने सब कुछ सामने देखते हुए भी अपने भाई का हाथ, अपने भाई का साथ नहीं छोड़ा, एवं मृत्यु को गले लगाया। जिसमें उनका कोई भी स्वार्थ नहीं था। उन्होंने केवल अपने भाई के लिए अपने जीवन को त्याग दिया ।यहां पर कुंभकरण का त्याग आदरणीय है। श्री राम जी के अन्य भाइयों में भी इसी प्रकार का त्याग देखने को मिलता है ।चाहे वह भरत के द्वारा श्री राम जी की चरण पादुका को राज सिंहासन पर विराजित करके उन्हीं का आज्ञा का पालन करनाआदि। भरत और शत्रुघ्न ने तथा लव कुश ने भी भ्रातृ प्रेम बहुत ही सुंदर तरीके से निभाया है।

४.३.६ राजा : प्रजा का सेवक--

रामचरितमानस में हर प्रकार की भारतीय संस्कृति की चरम सीमा का उल्लेख मिलता है। राजा का कर्तव्य है प्रजा पालन या जनता की सेवा। रामायण में राजा का कर्तव्य जनता की सेवा करना है और यह कार्य सभी राजा लोग भली भांति निभाते हैं। चाहे वह राजा दशरथ हो, राजा जनक हों, बाली और सुग्रीव हो, या लंका के राजा रावण हों। उनकी प्रजा सुखी एवम संपन्न है। और अपने राजा से बहुत अधिक प्यार करती है, उनका सम्मान करती है। राजा भी अपनी प्रजा का अपने पुत्रों की भांति ही ध्यान रखते हैं। रामायण में एक जगह प्रसंग है जहां रावण अपनी प्रजा की मुक्ति के लिए (क्योंकि उनकी प्रजा राक्षस जाति की थी) भगवान से प्रार्थना करते हैं
श्री रामचरित मानस में शिव भक्त श्री रावण के मन की बात जो उन्होंने न केवल स्वयं के मोक्ष के लिए सोची अपितु सारी राक्षस जाति के शुभ कल्याण के लिए भी इस पर विचार किया । यथा .....

**"सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥**
**तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥**

*भावार्थ:-रावण ने विचार किया कि देवताओं को आनंद देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊंगा। (इस प्रकार मैं तथा मेरी पूरी प्रजा ही श्री राम जी के हाथों मृत्यु को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेगी।)

**४.३.७ मर्यादा की पराकाष्ठा**

यहां श्री राम जी ने मर्यादा के चरम को छू लिया है । माना कि राजा का धर्म है अपनी प्रजा की देखभाल करना, उनके सुख - दुख का ख्याल रखना ।लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजा के कुछ भी कहने पर अपने और अपने परिवार का ध्यान ना रखा जाए। श्री राम जी ने एक धोबी के कहने पर अपनी गर्भवती पत्नी सीता का त्याग कर दिया जो मर्यादा का चरम है। इसके बाद जो कुछ भी हुआ वह हम सभी जानते हैं । सीता जी ने किस प्रकार अपने आप की रक्षा की, लव कुश को जन्म दिया एवं जंगलों में रहकर ही उनकी परवरिश की ।क्या राजा का कर्तव्य यह नहीं है कि वह अपने प्रजा में ही रहने वाली, उसके अंतर्गत आने वाली एक गर्भवती स्त्री की रक्षा करे? क्या राजा पुरुष नहीं है? क्या वह विवाहित नहीं है? अगर विवाहित है तो जितना दायित्व उसका अपनी प्रजा के सुख- दुख के लिए है ,उतना ही उसका दायित्व अपने परिवार के प्रति भी है।अपने परिवार के सदस्यों की सुरक्षा करना, अपने परिवार का भरण पोषण करना यह एक परिवार के मुखिया का, एक पुरुष का प्रथम कर्तव्य है। श्री राम जी इस से विमुख पाए जाते हैं । इसीलिए अति हर चीज की बुरी है हमें इस से बचना चाहिए। परोक्ष रूप से यहां पुरुष जाति को अपने परिवार एवं उसके सदस्यों की सुरक्षा, संगठन ,अनुशासन की शिक्षा दी गई है।

**४.३.८ गृहस्थ आश्रम में संतुलन अत्यावश्यक--**

मानस में तुलसी जी ने परोक्ष रूप से यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया है कि चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सभी रिश्तो को, सभी भावनाओं को, सभी मर्यादाओं को, स्वयं को संतुलित करके चलना पड़ता है ,और यह संतुलन बहुत अधिक कठिन है ।यही सब कुछ करते हुए ही हमें अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना है ,और निरंतर कर्मशील रहते हुए भक्ति मार्ग के द्वारा ईश्वरत्व को भी प्राप्त करना है। उन्होंने गृहस्थाश्रम को अनिवार्य बताया है और इसी में ही रहते हुए अपने सभी कर्मों को करने की प्रेरणा दी है। विभिन्न चरित्रों के माध्यम से उन्होंने अपनी बात स्पष्ट रूप से कहने का प्रयत्न किया है। श्री राम के चरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है । यहां हम यह कह सकते हैं कि पति की मर्यादा और पिता की मर्यादा का उन्होंने सही से पालन नहीं किया क्योंकि दूसरों के कहने पर अपनी पत्नी सीता का त्याग कर दिया और अपने पारिवारिक जीवन को ताक पर रख दिया जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए ।इतना भी अधिक आदर्शवादी देना चाहिए।हम सभी को सभी रिश्तो को, सभी की भावनाओं को संतुलित लेकर चलना चाहिए। उन्होंने एक धोबी के कहने पर अपनी गर्भवती पत्नी का त्याग कर दिया। जबकि अपनी पत्नी की सुरक्षा उनका प्रथम कर्तव्य था। इसलिए यहां इस प्रकार की मर्यादा की अतिश्योक्ति की गई है। जबकि यह सब कुछ

लीला ही थी परंतु फिर भी यहां पर अतिशयोक्ति है। हमें रिश्तो में रहते हुए इस प्रकार की अतिश्योक्ति से बचना चाहिए एवं सभी रिश्तो को बराबर मान - सम्मान देना चाहिए ।क्योंकि यदि परिवार सही है तो, समाज सही है, समाज सही है तो, राज्य सही है, और राज्य ठीक है तो, देश ठीक है और देश ठीक रहेगा, तो विश्व ठीक रहेगा ।इसलिए विश्व को ठीक करने की प्रथम इकाई मानव है, परिवार है। हमें वहीं से शुरुआत करनी है। शांति की, प्रेम की, भाईचारे की, सम्मान की ताकि प्रथम इकाई ही ठीक रहेगी तो समग्र अपने आप ठीक हो जाएगा।

मानस में यह कामना की गई है की एकता और अखंडता के साथ यदि हम इकट्ठे रहेंगे तो तरक्की करेंगे। यदि हम एक दूसरे का कहा नहीं मानेंगे , विलग होकर रहेंगे तो हमारे ऊपर अनेक प्रकार की विपत्तियां आ जाएंगी।यथा --

**"जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना; जहाँ कुमति तहाँ बिपति निदाना।"**

जिस घर में आपसी प्रेम और सद्भाव होता है वहां सारे सुख और संपत्ति होती है। और जहाँ आपस में द्वेष और वैमनष्य होता है ,उस घर के वासी दुखी व विपन्न हो जाते हैं। मानस में भी इसी प्रकार की भारतीय संस्कृति देखने को मिलती है । 'अतिथि देवो भव' का भाव मिलता है।

**४.३.८ पर्यावरण सुरक्षा एवं प्रकृति प्रेम-**

हमारी भारतीय संस्कृति सर्वत्र प्रकृति प्रेम, जीव प्रेम यानी सभी प्रकार के जीवो को समान मान्यता दी जाती है ।रामचरितमानस में प्रकृति के साथ, प्रकृति की रक्षा की बात की गई है ।पंचवटी, अशोक वाटिका इत्यादि का सौंदर्य वर्णन देखते ही बनता है। यहां पर प्रकृति संरक्षण एवं पशु, पक्षी प्रेम भी दर्शनीय है। जटायु, संपाती, बाली, सुग्रीव, जामवंत, हनुमान जी यह सब पशु जाति के होते हुए भी श्रीराम को बहुत अधिक प्रिय है एवम सभी का अपना महत्व है।

**४.३.९ वचनबद्धता -**

**"रघुकुल रीत सदा चली आईप्राण जाए पर वचन ना जाइ।"**

यह उक्ति आज भी उतनी ही प्रसिद्ध है जितनी उस युग में हुआ करती थी ।यानि अपने वचन को अपने प्राणों से भी अधिक महत्व देने की रीति। मानस में सबने अपने वचन का पालन अपनी जी जान से किया। चाहे वह राजा दशरथ हो या श्री राम ।वचन का पालन तन ,मन, धन से सभी ने किया है। वचन पालन में तो राजा दशरथ अपने प्राणों से ही हाथ धो बैठे, परंतु फिर भी अपने वचन का पालन किया। इस प्रकार श्रीराम ने भी अपने वचन का पालन प्रसन्नता के किया और 14 वर्ष तक वनवास में रहे। इस प्रकार मानस के माध्यम से अपने वचन पर अडिग होने का संदेश दिया जाता है जो भारतीय संस्कृति की पहचान है।

४.३.१० आस्था की पराकाष्ठा---

रामायण में आस्था और विश्वास की पराकाष्ठा है जिसमें पत्थर भी पानी में तैर जाते हैं ।रामसेतु इसका प्रमाण है जो आज भी देखा जा सकता है।पत्थर का पानी में तैर जाना आस्था की पराकाष्ठा है।

षड्यंत्र की संस्कृति---

हिंदू धर्म में जल्दी किसी की बातों में आने की संस्कृति बहुत अधिक है। अपने परिवार को छोड़ कर दूसरों के साथ निभाने की बात भी देखी जा सकती है। मंथरा के द्वारा अपनी बातों से किस प्रकार कैकई की मति भ्रष्ट की जाती है, और सारा खेल ही पलट जाता है। कहां राज्याभिषेक ,और कहां वनवास।दूसरी ओर किस प्रकार विभीषण के द्वारा अपने भाई को छोड़कर श्री राम के पास आया जाता है। यह बात देखते ही बनती है ।हम सब जानते हैं कि श्री राम स्वयं भगवान थे, विष्णु के अवतार थे, सच्चाई के पथ पर थे ।परंतु फिर भी भाई तो भाई ही है। जहां कुंभकर्ण ने अपने भाई का साथ नहीं छोड़ा, चाहे उसे सामने मृत्यु दिखाई दे रही थी। फिर भी उन्होंने सही शिक्षा देकर रावण को समझाने का प्रयत्न किया, कि आप सीता जी को लौटा दीजिए। परंतु जब वो नहीं माने तो उन्होंने युद्ध के लिए हां कर दी। सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपने भाई का साथ नहीं छोड़ा और दूसरी तरफ विभीषण अपने भाई को छोड़कर श्रीराम की तरफ चले गए। तभी से यह उक्ति प्रचलित है

"घर का भेदी लंका ढाए"।

कुल मिलाकर रामायण पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति पर आधारित ग्रंथ है ।इसमें सभी पात्र चाहे कुछ भी हो जाए अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं। चाहे वह महापंडित रावण ही क्यों ना हो, और श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम है ही। यहां हम त्याग, मर्यादा में लक्ष्मण और उर्मिला के नाम भी लेना चाहेंगे। क्योंकि सीता जी तो श्री राम के साथ वनों में गई थी ।उन्होंने राज महल के सुखों का त्याग किया था। उनके पति सीता जी के साथ थे, और जहां पति परमेश्वर साथ होता है वहां जंगल में भी मंगल होता है। परंतु जहां पति का वियोग है, वहां राजसी ठाट-बाट, महल के सुख- सुविधाएं निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं ,क्योंकि पति के साथ के बिना एक स्त्री का किसी भी चीज में मन नहीं लगता। ना हार श्रृंगार में ,ना खान- पकवान में,और न जी किसी अन्य में।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने "मुझे फूल मत मारो" में उर्मिला के चरित्र पर प्रकाश डाला है ।उर्मिला के चरित्र शुद्ध भारतीय नारी का प्रतीक है ।भारतीय संस्कृति का प्रतीक है जो मन, वचन, कर्म से केवल अपने पति के बारे में ही सोचती है, एवं कितनी भी मुसीबत क्यों ना आ जाए, अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है । तुलसीदास जी ने भी मानस में लिखा है कि -

"धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी आपत काल परखिए चारी "।

अर्थात् आपत्ति काल में इन सबकी पहचान होती है।

इस प्रकार रामचरितमानस में नैतिक मूल्यों का व्यापक विश्लेषण किया गया है। प्राणीमात्र के लिए यह मानस ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं जीवन आदर्श को सीखाने वाली है। अत: इसका अध्ययन परमावश्यक है।

## बोध प्रश्न

1. श्रीरामचरिमानस में काण्डों की संख्या कितनी है?

   क. 5 ख. 6 ग. 7 घ. 8

2. श्रीरामचरितमानस में किसके चरित्र का वर्णन है।

   क. राम ख. कृष्ण ग. भरत घ. हनुमान

3. निम्न में मर्यादा पुरूषोतम कौन है।

   क. राम ख. सीता ग. भरत घ. लक्ष्मण

4. रामायण के रचयिता कौन है ।

   क. तुलसीदास ख. वाल्मीकी ग. श्रीकृष्ण घ. कालिदास

5. रामचरितमानस की भाषा कौन सी है।

   क. हिन्दी ख. अवधी ग. मागधी घ. भोजपुरी

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

6. श्रीराम का स्वभाव ..... था।
7. जो मानस में नहीं है वह ..... के मानस में भी नहीं है।
8. श्रीराम का जन्म .....में हुआ था।
9. अयोध्या ..... नदी के तट पर स्थित है।
10. वाल्मीकी ..... पुत्र थे।

## ४.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जान लिया है कि रामचरितमानस की रचना कविकुलशिरोमणि भक्तहृदय तुलसीदास जी के द्वारा की गयी है। इसलिए उनकी रचनाओं में एक भक्त की झलक देखने को मिलती है जबकि बाल्मीकी रामायण के प्रणेता स्वयं ब्रह्मा जी के पुत्र है और उनसे प्रेरित होकर महाकाव्य रामायण की रचना करते है। बाल्मीकी जी को यह वरदान भी प्राप्त है कि वो जो लिख देंगे वही हो जायेगा। इसलिए रामचरितमानस और रामायण के भाव में थोड़ा बहुत अन्तर दिखलायी पड़ता है। कतिपय सुधीजनों का मानना है कि भगवान श्रीराम ने ही कराल कलिकाल के कुमतिकरवाल से विलुलित मानवीय मूल्यों से अपरिचित मानवजाति को वैदिकमार्ग पर प्रतिष्ठिति करने के लिए महर्षि

बाल्मीकी को एक ही साथ सम्पूर्ण सनातन वैदिक भारतीय वांगमय का भाष्य करने हेतु कविताभामिनीविलास गोस्वामी तुलसीदास के रूप में अपनी त्रिकालाबाधित वांगमयप्रतिभा प्रत्युत्पन्न संवितशक्ति के साथ भारतवसुन्धरा पर अवतरित किया।

रामचरितमानस ग्रंथ की रचना गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण को हिंदी भाषान्तर कर अवधी भाषा में चौपाई व् दोहो से सुसज्जित करके किया है।

श्रीरामचरितमानस कविकुलगुरु गोस्वामी तुलसीदास जी की कालजयी रचना है। उनके आराध्य प्रभु श्रीराम मर्यादा की पराकाष्ठा है अथवा जिनसे सारी मर्यादायें उत्पन्न होती है वह है - श्रीराम। श्रीरामचरितमानस भारतीय सनातन परम्परा एवं संस्कृति की संवाहिका ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति का प्राण बसा हुआ है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में यदि नैतिकता एवं मर्यादा का कोई स्रोत है तो वह है श्रीरामचरितमानस और उसके नायक – श्रीरामचन्द्र जी।

## ४.५ पारिभाषिक शब्दावली

मातृपितृ भक्त - माता-पिता का भक्त

कालजयी – अनन्त काल तक चलने वाला

भ्रातृ प्रेम - भाई से प्रेम

विकराल – भयावह

मानससुधा – मानस अमृत

भक्तहृदय – भक्त का हृदय

कुप्रभाव – बुरा प्रभाव

कलिकाल – कलियुग

भक्तवत्सल – भक्तों पर कृपा बरसाने वाले

पुरुषोत्तम – पुरूषों में श्रेष्ठ

विमल – पवित्र

आयुध – धनुष -बाण

दृढ़प्रतिज्ञ – दृढ़ निश्चय करने वाला

राघव – भगवान राम का नाम

रघुकुल – राजा रघु का कुल

## ४.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. क
4. ख
5. ख
6. कोमल
7. मनुष्य
8. अयोध्या
9. सरयू
10. ब्रह्मा

## ४.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रामचरितमानस – गीता प्रेस

रामचरितमानस – भावार्थबोधिनी टीका

वाल्मीकी रामायण – गीता प्रेस

## ४.८ निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रीरामचरितमानस का विस्तृत वर्णन करें।
2. श्रीराम के आदर्शों का विश्लेषण करें।
3. श्रीरामचरितमानस में प्रतिपादित नैतिक शिक्षा का वर्णन कीजिये।
4. रामचरितमानस एवं वाल्मीकी रामायण में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
5. श्रीराम के गुणों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
6. श्रीरामचरितमानस का नैतिक मूल्यों में अवदान का प्रतिपादन कीजिये।